आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
15, हनुमान रोड, नई दिल्ली

ओ३म्

शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा

सुरेन्द्र कुमार रैली

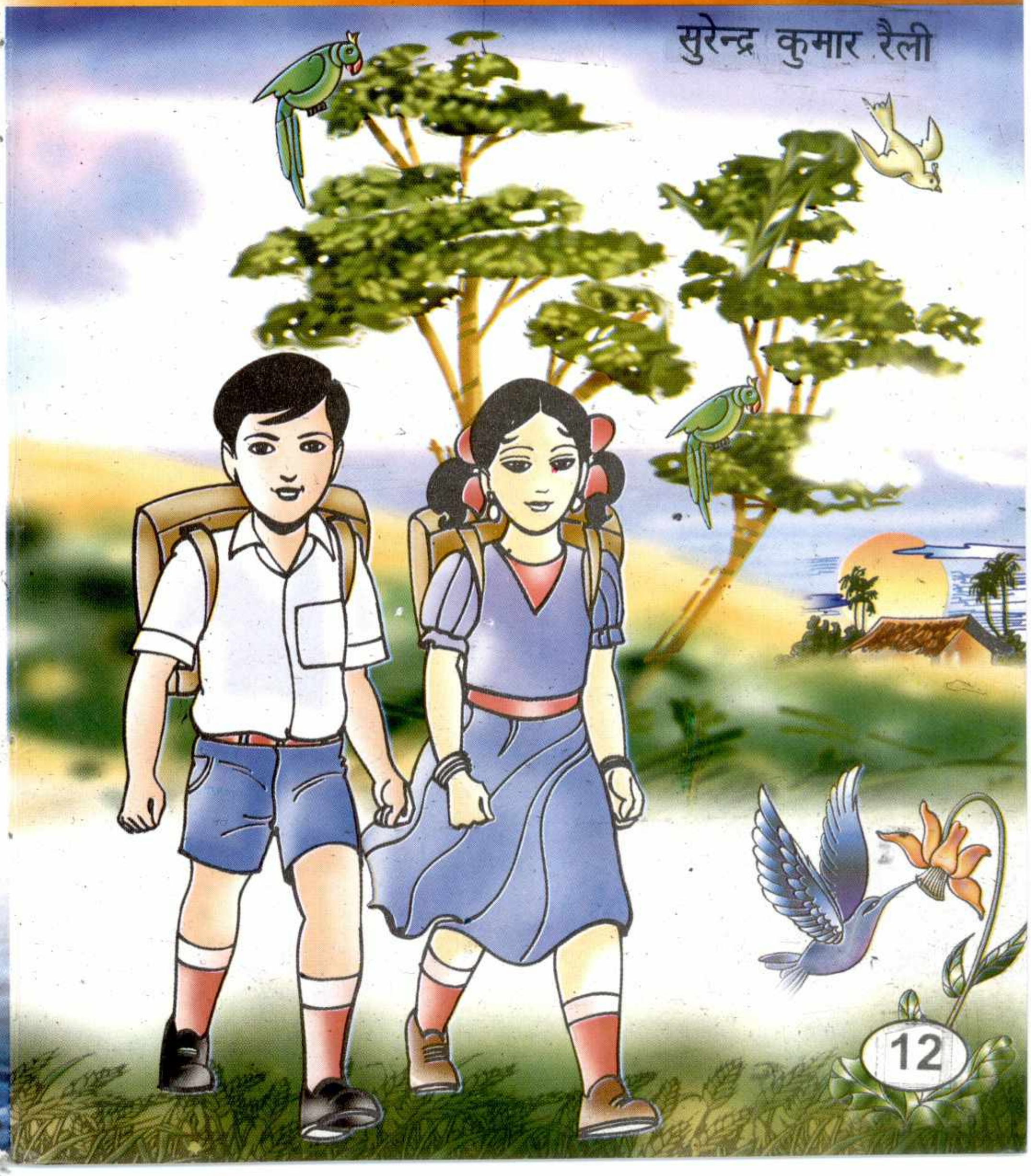

नयी पीढ़ी को सुसंस्कृत करने का उपक्रम

बालक और युवा ही भारत के भावी कर्णधार और निर्माता होंगे। लेकिन आज हमारी इस अमूल्य सम्पत्ति को निर्ममतापूर्वक विनष्ट किया जा रहा है। अपने इस मूलधन का विनाश हम खुली आँखों से देख रहे हैं। अमेरिकी वैश्वीकरण का घातक आक्रमण हमारे बालकों और युवाओं पर ही लगातार हो रहा है।

टी.वी., मोबाइल, कम्प्यूटर, इन्टरनेट ऐसे दुर्दमनीय साधन हैं जिनके द्वारा नई पीढ़ी के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान हो सकता था, परन्तु ये साधन तो बन्दर के हाथ में पलीते की तरह पड़ गये हैं और इनके द्वारा नयी पीढ़ी को अपसंस्कृति के जाल में बड़ी सुगमता से फँसाया जा रहा है।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा और उससे संलग्न आर्य विद्या परिषद् ने नयी पीढ़ी को सुसंस्कृत, सयमी, संवेदनशील, उत्तरदायित्वों को सहर्ष स्वीकार करने वाले नागरिक बनाने के लिए एक स्तुत्य उपक्रम हाथ में लिया है। शिष्टाचार और नैतिक शिक्षा का प्रचार और प्रसार ही उनका लक्ष्य है। उन्होंने इस विषय को लक्ष्य कर 12 भागों (कक्षा 1 से 12 तक) में व्यावहारिक और प्रभावशाली साहित्य का निर्माण किया है। इन पुस्तकों में छात्रों के शिष्टाचार और नैतिक विकास को दृष्टि में रखकर सामग्री प्रस्तुत की गयी है। छात्रों में उत्तम संस्कारों और आस्तिकता पर बल दिया गया है। इन पुस्तकों में संध्या और यज्ञ के साथ सदाचार की शिक्षा देने वाली सामग्री दी गयी है।

इन 12 पुस्तकों के लेखक व आर्य विद्या परिषद् के प्रस्तोता, श्री सुरेन्द्र कुमार रैली के धर्म, समाज और देश के प्रति सात्विक चिन्तन का ही मधुरफल है। लेखक ने प्रारंभ में ही बालकों को 12 अनिवार्य और आवश्यक बातें समझाई हैं। बालक के वैयक्तिक जीवन के साथ घर, परिवार, समाज, देश और धर्म का ज्ञान प्रश्नोत्तर शैली में कराया है। नित्यप्रति के व्यावहारिक ज्ञान से बालकों को अवगत कराया है। पुस्तक में ओ३म्, ईश्वर, वेद, वैदिक संध्या, प्रार्थना, गायत्री मन्त्र, वर्ण व्यवस्था, सत्यार्थ प्रकाश, कर्मफल, अग्निहोत्र, माँस भक्षण निषेध, त्रैतवाद, गोकरुणानिधि, मद्यपान निषेध, भारतीय दर्शन आदि विषय चर्चित हैं। दूसरे भाग में महापुरुषों के प्रेरणाप्रद चरित्र पुस्तकों की उपयोगिता को सिद्ध करते हैं। माता–पिता–गुरु की सेवा, अनुशासन, संयम, नमस्ते, स्वच्छता, सत्संगति, आसन प्राणायाम, एकता, श्रम, निष्ठा, शिष्टाचार, मित्रता, उत्तरदायित्व, सन्तोष, कर्तव्य परायणता, ब्रह्मचर्य, साहस, भ्रातृभाव इत्यादि सद्गुणों की शिक्षा, छोटी–छोटी कहानियों के माध्यम से, इस माला में अच्छी तरह चमक रही है। आर्य, आर्यावर्त, आर्य–समाज, गुरुकुल, डी.ए.वी., संस्कृत भाषा, इत्यादि विषयों का समावेश लेखक की सूझबूझ की दाद देता है। इन पुस्तकों का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। पुस्तकों की भाषा प्रांजल, शैली सुबोध और हृदयग्राही है। छपाई, साज–सज्जा नयनाभिराम हैं। मूल्य अतिअल्प है। यह पुस्तकें घर–घर पहुँचने योग्य हैं।

- कै. देवरत्न आर्य

प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

मुद्रक : एस.एन. प्रिंटर्स, 1/11807, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रार्थना मंत्र

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव।।

यजु० ।३० ।३ ।

अर्थ

हे समस्त संसार के उत्पन्न करने वाले शक्तिमान् प्रभो! हमारे समस्त दुर्गुण, दुष्कर्मों व दुर्व्यसनों को दूर करो और जो कल्याणकर गुण, कर्म व स्वभाव हो उसकी प्राप्ति कराओ।

24

जय घोष

जो बोले सो अभय—**वैदिक धर्म की जय**

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम चंद्र की—**जय**

योगीराज श्री कृष्ण चंद्र की—**जय**

गुरुवर विरजानंद दंडी महाराज की—**जय**

ऋषिवर स्वामी दयानन्द की—**जय**

धर्म पर मर मिटने वालों की—**जय**

देश पर बलिदान होने वालों की—**जय**

भारत माता की—**जय**

गौ माता का—**पालन हो**

आर्यसमाज—**अमर रहे**

वेद की ज्योति—**जलती रहे**

ओ३म् का झंडा—**ऊँचा रहे**

हमारा संकल्प—**कृण्वंतो विश्वमार्यम्**

वैदिक ध्वनि—**ओ३म्**

सबको वैदिक अभिवादन—**नमस्ते जी।**

★

शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा

(भाग-12)

सुरेन्द्र कुमार रैली
एम.ए.,एलएल.बी
प्रेरक व शिक्षाविद्
प्रस्तोता, आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली

पहला संस्करण – 2005
द्वितीय संस्करण – 2005
तृतीय संस्करण – 2006
आठवां संस्करण – 2011

मूल्य : ₹ 35.00

आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
15 हनुमान रोड, नई दिल्ली-110001

विषय-सूची

1.	भूमिका	3
2.	शिक्षकों से	5
3.	महर्षि दयानंद : क्रांति का सिंहनाद	6
4.	वेद : ईश्वरीय ज्ञान	12
5.	व्यक्ति और समाज	26
6.	हमारे पाँच शत्रु कैसे बनें मित्र !	30
7.	भारतीय दर्शन	35
8.	आर्य पर्व	38
9.	छः आवश्यक बातें	43
10.	वाल्मीकि	54
11.	महाभारत के मुख्य पात्र	57
12.	महात्मा गांधी और स्वामी श्रद्धानंद	65
13.	महात्मा गांधी	73
14.	वैदिक प्रश्नोत्तरी	77
15.	महान् गुण : आत्मविश्वास	81
16.	महान् गुण : न्यायप्रियता	85
17.	महान् गुण : श्रम	90
18.	महान् गुण : साहस	94
19.	महान् गुण : भ्रातृभाव	98
20.	महान् गुण : दूसरों की भावनाओं का आदर करना	102
21.	महान् गुण : तन-मन-वचन की शुद्धता	106
22.	वेदान्तध्वान्त-निवारण	109
23.	भजन	120
24.	जयघोष	128

आर्यसमाज के नियम

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानंदस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनंत, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वांतर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।
3. वेद सब सत्यविद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।
4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।
6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है-- अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
8. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट नहीं रहना चाहिए, किंतु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।

संगठन-सूक्त

ओ३म् सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर।।१।।
हे प्रभो ! तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को।
वेद सब गाते तुम्हें हैं कीजिए धन वृष्टि को।।
संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते।।२।।
प्रेम से मिल कर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भाँति तुम कर्त्तव्य के मानी बनो।।
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।३।।
हों विचार समान सब के चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हों।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।४।।
हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख संपदा।।

भूमिका

शिक्षा से ही मानव जीवन का विकास होता है और इसके द्वारा मनुष्य के शरीर, हृदय तथा मस्तिष्क का विकास होता है। विद्यालयों में विभिन्न विषयों का पठन-पाठन विद्यार्थियों को अपने जीवन में सही दिशा प्राप्त करने में सहायक होता है, परन्तु उसका आत्मिक विकास, नैतिक शिक्षा के द्वारा ही संभव है, और इसी से विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए मानवीय मूल्यों की शिक्षा मिलती है। आर्यसमाज का सदैव प्रयास रहा है कि इन मानवीय मूल्यों से विद्यार्थियों को प्रारम्भ में ही अवगत करा दिया जाये। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बद्ध आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली ने शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा की पुस्तकें बच्चों को उपलब्ध कराई हैं जिनके द्वारा उनमें अच्छे संस्कार और ईश्वर में विश्वास पैदा हो, तथा संध्या-यज्ञ आदि के साथ-साथ महापुरुषों के जीवन-चरित्र, उनकी शिक्षाएँ और सदाचार की शिक्षा देने वाली कहानियां भी सम्मिलित की गई हैं।

इन पुस्तकों में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) के वर्ष 2000 के पाठ्यक्रम को भी ध्यान में रखा है जिसमें निर्देश दिया गया है कि बच्चों में सुरुचिपूर्ण संवेदनशीलता, स्वस्थ जीवन शैली, सकारात्मक सामाजिक चेतना, परिश्रम के प्रति आदर व नैतिक मूल्यों में आस्था का समावेश होना चाहिए ताकि वह दूसरों के

विचारों को बड़ी नम्रता से समझते हुआ सद्भाव एवं विवेक से अपनी कथनी और करनी में उन्हें लाएं।

हमारा प्रयास है कि हम विद्यार्थियों में सत्य, सद्भाव, सहयोग, ईमानदारी और परिश्रम करने जैसे अनेक गुणों का उनके जीवन में समावेश कर सकें।

इन 12 पुस्तकों के लेखन में जिन-जिन महानुभावों से प्रत्यक्ष रूप से अथवा उनके लेखों, कहानियों, गीतों व भजनों आदि के माध्यम से परोक्ष रूप से सहयोग मिला है, विशेष रूप से डा० गंगा प्रसाद जी, डा० महेश वेदालंकार जी, डा० रघुवीर वेदालंकार जी, डा० कमल किशोर गोयनका जी, डा० सत्यभूषण वेदालंकार जी, श्री धर्मपाल शास्त्री जी एवं श्री यशपाल शास्त्री जी, मैं उन सबके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि विद्यार्थी, अध्यापकवृंद और अन्य लोग इस पुस्तक को उपयोगी पायेंगे और विद्यार्थियों को सुसंस्कृत बनाकर राष्ट्रनिर्माण की सतत् पुण्यप्रक्रिया में सहयोगी होंगे।

सुरेन्द्र कुमार रैली

शांति पाठ मंत्र

ओं द्यौ शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषध्यः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।।

।। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

यजु. ३६/१७

शांति गीत

१. शांति कीजिए, प्रभु त्रिभुवन में ।।
जल में, थल में और गगन में,
अंतरिक्ष में, अग्नि, पवन में।
औषधि वनस्पति वन-उपवन में,
सकल विश्व में जड़-चेतन में ।। शांति ...

२. ब्राह्मण के उपदेश वचन में,
क्षत्रिय के द्वारा हो रण में ।
वैश्य जनों के होवे धन में,
और शुद्र के हो चरणन में।। शांति ...

३. शांति राष्ट्र निर्माण सृजन में,
नगर ग्राम में और भवन में।
जीवमात्र के तन में, मन में,
और जगती के दो कण-कण में।। शांति ...

*
**
राष्ट्रीय प्रार्थना

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्रह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आ राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्रीः धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।।

यजु० २२ । २१।।

अर्थ

ब्रह्मन् ! स्वराष्ट्र में हों द्विज ब्रह्म-तेजधारी ।
क्षत्रिय महारथी हों अरिदल-विनाशकारी ।।
होवें दुधारू गौएँ पशु अश्व आशुवाही ।
आधार राष्ट्र की हों नारी सुभग सदा ही ।।
बलवान् सभ्य योद्धा यजमान-पुत्र होवें।
इच्छानुसार वर्षें पर्जन्य ताप धोवें ।।
फल-फूल से लदी हों औषध अमोघ सारी ।
हो योगक्षेमकारी स्वाधीनता हमारी ।।

शिक्षकों से

शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा की इस पुस्तक का उद्देश्य बच्चों में सहजभाव से अच्छे संस्कार पैदा करना है। उनमें सदाचार के प्रति निष्ठा, महापुरुषों के प्रति श्रद्धा, नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूकता एवं धार्मिक रूचि आदि गुण उत्पन्न करके उन्हें शालीन, शिष्ट, अनुशासनप्रिय और कर्त्तव्यनिष्ठ बनाना है। इसलिए शिक्षक इस विषय को ऐसी मधुर शैली से पढ़ाएं, जिससे बच्चों की इस ओर रूचि बढ़े और वह स्वतः बड़ी आतुरता से इस विषय के घण्टे के आने की प्रतीक्षा किया करें।

शिक्षक को पहले दिन से ही शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा के विषय का परिचय कराते हुए, विद्यार्थियों को इसकी उपयोगिता से अवगत करा देना चाहिए कि शिक्षा प्राप्ति के बाद वह चाहे किसी क्षेत्र में भी कार्यरत हों, यह ज्ञान उनको उनके दैनिक जीवन में आयुभर काम आएगा।

शिक्षकों से अनुरोध है कि इस पुस्तक के पाठों को रटाने का प्रयत्न न करें। बच्चों को केवल अच्छी तरह से उदाहरण देकर बात समझा दें। परीक्षा में प्रश्न पूछने की शैली वैसी ही होगी जैसी अन्य विषयों में होती है।

सुरेन्द्र कुमार रैली

3

महर्षि दयानन्दःक्रांति का सिंहनाद

महर्षि दयानन्द सरस्वती भारतीय समाज में आमूलचूल परिवर्तन चाहते थे। उस समय समाज में जो कुरीतियां व्याप्त थी उनको दूर करने और नये समाज का निर्माण करने के लिए स्वामी दयानन्द जैसे व्यक्तित्व की आवश्यकता थी। वह युग ही वास्तव में समाज सुधार का युग था।

सामाजिक सुधार का यह स्वर कभी बंगाल में मुखरित हुआ था – राजा राम मोहन राय, केशवचंद्र सेन, ईश्वरचंद विद्यासागर इसी सुधार के प्रणेता थे। सुधार की यही वाणी महाराष्ट्र में महादेव गोविंद रानाडे और प्रार्थना समाज के स्वर में भी उच्चरित हुई थी, किन्तु सुधार की गति सदैव मन्द-मन्थर होती है। लेकिन क्रांति वेग से आती है। वह न सतही पपड़ियां तोड़ती हैं, न बचा-बचाकर परतें उलटती हैं। क्रांति तो क्रांति है – द्रुत एवं तीव्र। अन्य सुधारक मात्र सुधारक थे। स्वामी दयानन्द का सुधार क्रांति की कोटि का था। लोग तिलमिलाए, छटपटाए किन्तु यह स्वामी दयानन्द का क्रांति स्वर था, जातीय जीवन को सजग करने का उच्च्व निनाद था, जो विरोधों के सामने झुका नहीं, बढ़ता ही गया। लोगों ने स्वामी दयानन्द के सुधार को अन्यथा समझा और उन्हें अनेक बार विष तक दे दिया गया, किन्तु वह स्वामी दयानन्द जी ही थे कि इन्होंने न गालियों की चिन्ता की, न ईंट-पत्थरों की, जहर पीते रहे और संसार का कल्याण भी करते रहे –

समर्पण

अब सौंप दिया है जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में।
अब जीत तुम्हारे हाथों में और हार तुम्हारे हाथों में।।
मेरा निर्णय बस एक यही, एक बार तुम्हें पा जाऊँ मैं।
अर्पण कर दूँ दुनिया भर का सब प्यार तुम्हारे हाथों में।।
जब जब संसार का कैदी बन, दरबार में तेरे आऊँ मैं।
मेरे कर्मों का हो निर्णय सरकार तुम्हारे हाथों में।।
यदि जग में रहूँ, रहूँ इस विध से इस पार रहूँ उस पार रहूँ।
मम जीवन नौका की होवे पतवार तुम्हारे हाथों में।।
मुझ से तुझ में बस भेद यही मैं नर हूँ तू नारायण है।
मैं हूँ संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में।।
जब जब मानव का जन्म मिले, तब तब चरणों की पूजा करूँ।
नस नस से प्रेम टपकता हो, हो तार तुम्हारे हाथों में।।

सब में ओ३म्

मुझमें ओ३म्, तुझमें ओ३म्
सबमें ओ३म् समाया।
सबसे कर लो प्यार जगत में,
कोई नहीं पराया।। मुझमें ओ३म्...

जितने हैं संसार के प्राणी, सबमें एक ही ज्योति,
एक बाग के फूल हैं सारे, इक माला के मोती,
एक ही कारीगर ने सबको इक माटी से बनाया।।
सबसे करलो प्यार...

एक पिता के बच्चे हैं हम, एक हमारी माता,
दाना-पानी देने वाला एक हमारा दाता,
फिर न जाने किस मूरख ने लड़ना हमें सिखाया।।
सबसे करलो प्यार...

ऊँच-नीच और भेद-भाव की दीवारों को तोड़ो,
ज़माना बदला तुम भी बदलो, बुरी आदतें छोड़ो,
जागो और ज़गाओ सबको, समय ही ऐसा आया।।
सबसे करलो प्यार...

''पी पी के प्याले जहर के,
करते रहे उपकार वे।
चिन्ता थी प्यारे धर्म की,
सोचा भला जहान का ।''

उग्र खण्डन की साधना

सामान्य रूप से लोगों को यह शिकायत रहती है कि स्वामी दयानंद का खण्डन बड़ा उग्र कठोर होता था। इतिहास साक्षी है कि सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द ने जब देश में प्रचलित पाखण्ड का खण्डन किया था, उस समय खण्डन की यह उग्रता न थी, किन्तु उन्होंने थोड़े ही समय में यह अनुभव कर लिया कि प्रमाद की जिस प्रगाढ़ निद्रा में जन जीवन सो रहा है, वह आह्वान के मृदु स्वर को अनसुना कर रहा है । इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें जगाने के लिए कड़ी चोट करना आवश्यक होगा। किसी भी सुन्दर वस्तु के निर्माण के लिए पहले की वस्तु को तोड़ना और तपाना पड़ता है। यही बात महर्षि दयानन्द के समाज सुधार के कार्यों के लिए भी सर्वथा सत्य है। उन्होंने अपने प्राणों को संकट में डाल दिया, किन्तु लोगों को जगाने का अटल निश्चय किया। जहर तो कितने ही लोगों ने दिया था, कितने गुण्डों ने उन पर प्राणांतक आक्रमण किये थे। एक धूर्त पुजारी ने शास्त्रार्थ के समय उन पर विषधर काला नाग भी फेंक दिया था, एक रईस राजा ने उनका सिर काट देने के लिए तलवार भी चला दी थी, पर आदित्य ब्रह्मचारी, देशोद्धार के व्रतधारी स्वामी दयानन्द ही थे, जिन्होंने सारी कठिनाइयों का सामना किया, किन्तु सुधार कार्य से विरत न हुए। एक भक्त ने जब यह अनुरोध किया था कि महाराज खंडन में इतनी कठोरता न किया करें, तो स्वामी

दयानन्द का बड़ा सुस्पष्ट उत्तर था – पाप का घड़ा नहन्नी से नहीं काटा जाता, उस पर तो कुल्हाड़ा, फावड़ा ही चलाना पड़ता है।

वस्तुतः विरोध का उग्र तेवर वही उठा सकता है जिसके हृदय में शुभचिंतन की पराकाष्ठा हो। मीठी-मीठी, चिकनी-चुपड़ी बातें करना और जातीय जीवन की बुराइयों को सह जाना अथवा नजर अंदाज कर देना किसी सच्चे देश व जाति के हितैषी से कैसे सम्भव हो सकता था ? स्वामी दयानन्द देश, धर्म, जाति के सच्चे हितैषी थे। अतः वह कभी किसी मूल्य पर भी सत्य उचित कल्याणकारी सिद्धान्तों के साथ नर्मी का समझौता न कर सके। उन्हें जहर पीना मंजूर था, किन्तु जिन बुराइयों से, जिन सामाजिक कोढ़ों से समाज सड़ रहा था, उनका विरोध करने में स्वामी दयानन्द न कभी हिचकिचाये, न कभी किसी तरह का संकोच किया।

स्वामी दयानन्द ने देश-जाति-धर्म का सुधार आरम्भ किया। राष्ट्र कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने संस्कृति के चार अध्याय में लिखा है – "ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज में नेता अपने धर्म और समाज में सुधार तो ला रहे थे, किन्तु उन्हें बराबर यह खेद सता रहा था कि हम जो कुछ कर रहे हैं, यह विदेश की नकल है। अपनी दीनता और विदेशियों की श्रेष्ठता के ज्ञान से उनकी आत्मा कहीं न कहीं दबी हुई थी। अतएव कार्य तो प्रायः उनके भी वैसे ही रहे, जैसे स्वामी दयानन्द के थे, किन्तु आत्महीनता के भाव से अवगत रहने के कारण वे दर्प से नहीं बोल सके। यह दर्प स्वामी दयानन्द में चमका, रूढ़ियों और गतानुगतिकता में फंसकर अपना विनाश करने के कारण भारतवासियों की उन्होंने कड़ी निन्दा की और उनसे कहा कि तुम्हारा धर्म पौराणिक संस्कारों

सर्वव्यापक

दुनिया की हर वस्तु भगवन तेरी याद दिलाती है।
पत्ता पत्ता डाली डाली तेरे ही गुण गाती है।।
सुंदर है तेरी यह माया पृथ्वी सूरज चाँद बनाया।
पी पी करे पपीहा, कोयल सुंदर राग सुनाती है।।
ऋषियों मुनियों ने है ध्याया, मन मंदिर में तुझको पाया।
जर्रे जर्रे में आप समाया श्रुति यही बतलाती है।।
रंग बिरंगे फूल खिलाए, नदियाँ नाले खूब चलाए।
हाथों बिना पहाड़ बनाए समझ नहीं कुछ आती है।।
दुनिया है सुंदर फुलवारी फूल हैं जिसमें सब नर नारी।
देख के रचना जनता सारी जय जयकार मनाती है।।
नदियों में सब जल ही जल है, बागों में सब फल ही फल है।
जंगल में सब हरियावल है, बदली मेंह बरसाती है।।
आत्मा अपनी शुद्ध बनाएँ, वेद ज्ञान से लाभ उठाएँ।
मन मंदिर से 'नंदलाल' आवाज यही अब आती है।।

23

भजन

तेरा दर सबसे प्यारा

तेरे दर को छोड़ कर किस दर जाऊँ मैं।
सुनता मेरी कौन है किसे सुनाऊँ मैं।।
जब से याद भुलाई तेरी लाखों कष्ट उठाए।
क्या जानूँ इस जीवन अंदर कितने पाप कमाए।
हूँ शर्मिंदा आपसे क्या बतलाऊँ मैं।। तेरे दर को¨
मेरे पाप कर्म ही तुझसे प्रीति न करने देते।।
कभी जो चाहूँ मिलूँ आपसे रोक मुझे वह लेते।
कैसे स्वामी आपके दर्शन पाऊँ मैं।।
है तू नाथ वरों का दाता तुझसे ही वर पाते।
ऋषि मुनी और योगी सारे तेरे ही गुण गाते।
छींटा दे दो ज्ञान का होश में आऊँ मैं। तेरे दर को¨
जो बीती सो बीती लेकिन बाकी उमर सँभालूँ।
चरणों में जो बैठ आपके गीत प्रेम के गालूँ।
जीवन भगवन् अपना सफल बनाऊँ मैं।।

की धूल में छिप गया। इन संस्कारों की गंदी परतों को तोड़ फेंको। तुम्हारा सच्चा धर्म वैदिक धर्म है, जिस पर आरूढ़ होने से तुम फिर से विश्व विजयी हो सकते हो।'' महर्षि दयानन्द की विचारधारा पूर्णतः भारतीय थी। वे किसी अन्य विचारधारा से प्रभावित न थे। वे दूसरों के दर्शन को जानते थे पर प्रचार उसी का करते थे जो पूर्णतः उनकी कसौटी पर खरा उतरता था।

सच बात यह है कि राजनीति के क्षेत्र में हमारी राष्ट्रीयता का उज्ज्वल तेज यदि बाल गंगाधर तिलक में उद्भाषित हुआ था तो धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में हमारा आत्मभिमान स्वामी दयानन्द की दर्पमयी सजग वाणी में निनादित हो उठा था। स्वामी दयानन्द के उग्र विरोध के पीछे यह जातीय स्वाभिमान एक अनिवार्य कारण था।

महर्षि दयानन्द जब कार्यक्षेत्र में उतरे, उस समय अंग्रेजों का राज्य भारतवर्ष में दृढ़ता से जम चुका था। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय सब ओर से हार चुके थे। जातीय जीवन को बड़ी भारी ठेस लग चुकी थी। इधर छुआछूत, जात-पात का बड़ा विकृत रूप व्याप्त था। महर्षि दयानन्द ने लोगों को बताया कि सब मनुष्य उसी परमात्मा के पुत्र हैं। न कोई छोटा, न कोई बड़ा। वेद का उपदेश है कि हममें **'अज्येष्ठास अकनिष्ठास'** – न कोई ज्येष्ठ, न कोई कनिष्ठ। ऋषि दयानन्द ने जन्म की वर्णव्यवस्था के स्थान पर गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन किया। जन्म का झूठा अभिमान दूर करके विद्या, जीवन, चरित्र का मूल्य बोध कराया।

इधर विद्या का प्रचार रुक गया। जन-साधारण तो विद्याध्ययन करता ही न था। पण्डित-पुरोहित कुछ थोड़ा-सा कर्मकाण्ड पढ़कर ही विद्वान् हो जाते थे। ऊपर से धर्मशास्त्र का विधान ठोक दिया

जाता था –'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्।' स्त्री और शूद्र को नहीं पढ़ना चाहिए। इसे वेद वाक्य कहा जाता था। महर्षि दयानन्द ने पण्डितों को ललकारा कि यह वेद वाक्य नहीं, तुम्हारी कपोल कल्पना है। गार्गी, मैत्रेयी आदि सहस्रों–सहस्र स्त्रियां वेद पढ़ती थीं। उस समय कोढ़ में खाज के रूप में बाल विवाह पूरे जोर से प्रचलित था। छोटे-छोटे दूध पीते बच्चे भी ब्याह दिये जाते थे। समाज में अनाचार दुराचार का बोलबाला था। ऋषि दयानन्द ने इस अंधविश्वास को दूर किया और कन्याओं के विवाह की आयु शास्त्रों के आधार पर सोलह वर्ष की बताई। 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।' लड़की जब युवती हो जाये तब उसका विवाह युवा पुरुष से होना चाहिए।

ऋषि दयानन्द की अविस्मरणीय सेवाओं में एक बात यह भी सम्मिलित है कि उन्होंने मनुष्यमात्र को वेद पढ़ने का अधिकार दिया। पहले वेद केवल ब्राह्मणों के लिए एकाधिकार थे। यूं तो ब्राह्मण भी केवल कर्मकाण्ड मात्र के लिए वेदों को पढ़ते हैं। यहां महर्षि दयानन्द ने दोहरी क्रांति की। एक तो उन्होंने यह घोषणा की, वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेदों को पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। इसका अर्थ यह हुआ कि वेद मन्त्र केवल कर्मकाण्ड के लिए नहीं है, बल्कि ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थ हैं। ऋषि दयानन्द ने एक सीधा-सा तर्क दिया कि परमेश्वर ने जो कुछ बनाया है वह सब प्राणीमात्र के लिए है, उन सबको वेद पढ़ने चाहिए। विश्वविख्यात विचारक रोम्यां रोला ने लिखा है कि जिन वेदों को हजारों वर्षों से ब्राह्मणों ने अपने एकाधिकार के ताले में बंद कर रखा था, उन्हें ऋषि दयानन्द सरस्वती ने मनुष्य मात्र के लिए सुलभ करा दिया। रोम्यां रोला के अनुसार ऋषि दयानन्द यदि और कुछ न भी कर पाते तो इतने

(6) कला कौशलादि से स्वदेशादि मनुष्यों का सुखविधान।

(7) परस्पर प्रीति करना। हठ, दुराग्रह, दुष्टों की संगादि को छोड़ना।

(8) उत्तम-उत्तम पुरुष तथा स्त्री लोगों की सभाओं में सब मनुष्यों का हित विचारना।

(9) सत्यव्यवहारों की उन्नति करना इत्यादि मनुष्यों के अवश्य कर्त्तव्य है।

इनकी सिद्ध के लिए सर्वशक्तिमान, सब जगत् के पिता, माता, राजा, बन्धु जो परमात्मा है उससे मैं अत्यन्त नम्र होके प्रार्थना करता हूँ कि सब मनुष्यों पर कृपा करके असन्मार्ग से हटाके सन्मार्ग में चलावे, वही हमारा परम गुरु है।

ही नहीं आता तथा जो जीव ही ब्रह्म हो तो जैसे ब्रह्म ने यह असंख्यात सृष्टि की है वैसे एक मक्खी वा मच्छर को भी जीव क्यों नही बना सकता ? इससे जगत् को मिथ्या और जीव-ब्रह्म की एकता मानना ही मिथ्या है।

नवीनवेदान्त के मत में दोष - (1) जगत् को मिथ्या मानने में जगत् की उन्नति, परस्पर प्रीति और विद्यादि गुणों की प्रापित करने में पुरुषार्थ और श्रद्धा अत्यन्त नष्ट होने से जगत् के जितने उत्तम कार्य हैं, वे सब नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

(2) जीव तथा ब्रह्म को एक मानने से सब परमार्थ नष्ट हो जाते हैं क्योंकि परमेश्वर की आज्ञा का पालन, स्तुति, प्रार्थना, उपासना करने की प्रीति बिल्कुल छूटने से केवल मिथ्याभिमान, स्वार्थसाधनतत्परता, अन्याय का करना, पाप से प्रवृत्ति, इन्द्रियों से विषयभोगों में फँसने से अत्यन्त पामरता और पतितादिक दोषयुक्त होके अपने मनुष्यजन्म–धारण करने के जो कर्त्तव्य, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों फल नहीं होने से मूर्तिपूजनादि व्यवहारों का करने से उस जीव का जन्म निष्फल हो जाता है।

मनुष्य क्या करें ? इससे मनुष्यों को उचित है कि –

(1) सदाविद्यादि गुणों का जगत् में प्रचार करना

(2) व्यवहार परमार्थ की शुद्धि और उन्नति करना।

(3) वेदविद्यादि सनातन ग्रन्थों का पठन-पाठन।

(4) नाना भाषाओं में वेदादि सत्यशास्त्रों के सत्यार्थ को प्रकाशित करना।

(5) एक निराकार परमात्मा की उपासनादि का विधान करना।

मात्र से ही वह इतिहास में अमर हो जाते। स्वामी दयानन्द ने वेदों का भाष्य संस्कृत में किया। साथ ही हिन्दी में भी पदार्थ और भावार्थ प्रकाशित किया। जिससे जन-साधारण को वेद रूपी ईश्वरीय ज्ञान से उपकार मिल सके। वेदों को जन-जन तक सुलभ कराने में महर्षि दयानन्द का योगदान सदा स्मरणीय रहेगा।

स्वामी दयानन्द ने जब मनुष्यमात्र को वेद पढ़ने का अधिकार दिया तो इसका सीधा-सा अर्थ हुआ कि मनुष्य मात्र को शिखा सूत्रधारी आर्य बनने का अधिकार दे दिया। अब तक मुसलमान या ईसाई, हिन्दू न बन सकते थे। केवल हिन्दू ही ईसाई-मुसलमान बनते जा रहे थे। अब ईसाई-मुसलमान भी हिन्दू बन सकते थे। इससे लोग चौंके। सचमुच यह सिद्धांत क्या था – रणारूढ़ हिन्दुत्व का समरवाद था। धारा उलट गई, शुद्धि, भ्रातृ-मिलन का बिगुल बज उठा किन्तु रूढ़िग्रस्त लोग महर्षि दयानन्द के प्राणों के प्यासे बन बैठे। जोधपुर में उन्हें ऐसा प्राणघाती विष दिया गया कि संवत् 1940 विक्रमी सन् 1883 ई. की दिवाली को इस क्रातिकारी देशोद्धारक, वेद प्रचारक संन्यासी की जीवन लीला अजमेर में समाप्त हो गई । दिवाली उनकी पुण्य तिथि, पवित्र स्मृति है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने देश में जो सुधार की क्रांति की ज्वाला प्रज्ज्वलित की, वह और अधिक बढ़ती जा रही है। संसार उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हैं।

4

वेद : ईश्वरीय ज्ञान

वेद वह ईश्वरीय सत्य ज्ञान है, जो सृष्टि के आरंभ में ईश्वर ने मनुष्यों के लिए ऋषियों द्वारा दिया था। यदि ईश्वर उस समय यह ज्ञान न देता तो मनुष्य स्वयं यह सब कुछ कैसे जान सकता था ? ईश्वर ने यह ज्ञान बीज रूप में दिया। बाद में अपनी बुद्धि से मनुष्य ने समय-समय पर उस मूल ज्ञान के आधार पर नए-नए पदार्थों का ज्ञान प्राप्त किया और नए आविष्कार भी किए। इस बात को स्पष्ट करते हुए महर्षि स्वामी दयानंद ने आर्यसमाज के पहले नियम में ही लिखा है कि, **'सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।'**

ईश्वर ने चार ऋषियों को अलग-अलग वेदों का ज्ञान दिया। ऋग्वेद—जो ज्ञान का विषय है—अग्नि ऋषि को; यजुर्वेद—जिसका विषय कर्म है—वायु ऋषि को; सामवेद—जिसका विषय उपासना है—आदित्य ऋषि को; और अथर्ववेद—जिसका विषय विज्ञान है—अंगिरा ऋषि को दिया। वेदों का ज्ञान ऋषियों को ईश्वर ने समाधि-अवस्था में उनके मन को दिया।

चारों वेदों के ज्ञान को यदि हम संसार का संविधान कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसमें हर प्रकार की सत्यविद्या का

जीव, ईश्वर का एक मानना केवल जंगली पुरुषों की कथा है, ऋषिमुनि-विद्वानों की कथा नहीं है। और भी इस विषय में श्वेताश्वरोपनिषद् के वचन प्रमाण हैं –

(2) जो सूक्ष्म से सूक्ष्म, बड़े से बड़ा परमात्मा इस जीव के बीच में अर्थात् ज्ञान में निहित है। उस परमात्मा को अभिमान-शून्य, शोकादिदोषरहित, परमात्मा का कृपापात्र जीव ज्ञान से देखता है और उस आत्मा अन्तर्यामी परमात्मा की महिमा, सर्वशक्तिमत्त्व, व्यापकत्वादि गुणों को भी वही देखता है, अन्य नहीं। यहाँ भी जीव तथा ब्रह्म का भेद प्रतिपादित है।

(3) वेदान्तदर्शन के इन सूत्रों से भी जीव तथा ब्रह्म का अलग-अलग होना निश्चित है – 'नेतरोऽनपपत्तेः' अर्थात् जीव से जगत-रचना की चेष्टा नहीं हो सकती। ''भेदव्यपदेशाच्च' ब्रह्म और जीव दोनों भिन्न ही हैं। 'मुक्तोपसृत्य व्यपदेशात्' मुक्त पुरुष ब्रह्म की समीपता को प्राप्त होके आनन्दी होते हैं। इत्यादि सूत्रों से स्पष्ट सिद्ध है कि जीव-ब्रह्म एक नहीं किन्तु अलग-अलग हैं।

नवीनवेदान्तियों का खण्डन- इन लोगों में दो बड़े दोष हैं। एक तो जगत् को मिथ्या मानना; दूसरा जीव–ब्रह्म को एक मानना। जगत् को मिथ्या मानने में ऐसा कहते हैं कि यह जगत् स्वप्न के तुल्य है। सो यह उनका कहना मिथ्या है, क्योंकि - (1) जिसकी उपलब्धि होती और जिसका कारण सत्य है, उसको मिथ्या कहने वाले का कथन ही मिथ्या है। (2) स्वपन भी देखे गये तथा सुने गये संस्कार में होता है, इसके बिना स्वप्न नहीं होता। सर्वज्ञ और अवस्थादिरहित होने से परमात्मा को तो स्वप्न

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् ब्रह्मणा सह विपश्चितेति।
(तैत्तिरीयप0)

जो जीव सत्य, ज्ञान और अनन्त स्वरूप ब्रह्म सर्वान्तर्यामी मी स्वबुद्धि ज्ञान में निहित जानता वा प्राप्त होता है वह परमव्योम = व्याप्यस्वरूप जो परमात्मा, उसमें में स्थिर होता है।

जीव तथा ब्रह्म प्रश्क्-प्रथक्

प्रश्न - **'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् अनेनात्माना जीवनानुप्रविश्यनामरूपे व्याकरवाणि'** यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है। इसका अर्थ है कि वह ब्रह्म जगत् को उत्पन्न करके इसमें प्रविष्ट हो गया। उसने कहा कि मैं जीवात्मारूप अन्तःकरण में प्रविष्ट होके नाम, रूप धारण करूँ। इससे यह सिद्ध होता है कि वही ब्रह्मजीवरूप बना है।

उत्तर–(1) यह आप लोगों को अनर्थकरण है क्योंकि परिपूर्ण, एकरस, सबमें जो व्याप्त है वह प्रवेश वा निकल नहीं सकता किन्तु जीव बुद्धि से जब तक अज्ञानी रहता है, और उसी बुद्धि से जब जीव को ज्ञान होता है तब उसी से परमात्मा प्राप्त होता है, अन्यत्र नहीं। इससे जीव को ऐसा मालूम पड़ता है कि ब्रह्म मेरे अन्दर प्रविष्ट हुआ है। जब-जब जिस-जिस जीव को ईश्वर का ज्ञान होता है, तब-तब उसको अपने आत्मा में ही होता है । इससे यह भी निश्चित होता है कि प्रवेश का करने वाला तथा जिसमें प्रवेश करता है, उन दोनों का अलग ही होना निश्चित है क्योंकि एक प्रवेश करने वाला तथा दूसरा अनुप्रवेश करने वाला है। इससे

ज्ञान निहित है, चाहे वह उपासना और भक्ति हो या प्रकृति के अटल नियमों का विज्ञान हो। संसार में किस प्रकार रहना है, कैसा व्यवहार करना है, किसका क्या कर्त्तव्य है तथा किन नियमों का पालन करना है, इत्यादि सब बातों का विवेचन वेद में विस्तार से विद्यमान है। ईश्वर ने प्राणी मात्र के कल्याण के लिए संविधान के रूप में मानव को वेद-ज्ञान प्रदान किया। क्योंकि वेद-ज्ञान मानवमात्र के लिए है, अतः वेद पढ़ने का अधिकार व धर्म प्रत्येक व्यक्ति का है, चाहे वह स्त्री हो, पुरूष हो या किसी भी जाति, वंश, वर्ण, रंग, रूप, देश का क्यों न हो। स्वामी दयानंद ने आर्यसमाज के नियम तीन में लिखा है, **'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।'**

सृष्टि के आरंभ में ईश्वरीय ज्ञान वेद की अनिवार्यता क्यों हुई?

जैसा कि हमने ऊपर लिखा है कि वेद के रूप में परम पिता परमात्मा ने सृष्टि के आदि में अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा के माध्यम से मानव जाति को उसके स्वाभाविक ज्ञान के साधन बुद्धि की सहायता के लिए ज्ञान प्रदान किया। इस मान्यता की पुष्टि में जो छह तर्क दिए गए हैं उनकी बड़ी सुंदर और सटीक व्याख्या स्वामी विद्यानंद (स्व. प्रि० लक्ष्मीदत्त दीक्षित) रचित ग्रंथ 'वेदमीमांसा' में दी हुई है, जो निम्न प्रकार है :–

(1) **नोपदेशमन्तरा ज्ञानोत्पत्ति :–** उपदेश शिक्षा के बिना ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती ।

(2) **स्वाभाविकज्ञानमात्रेणानुपपत्तेर्वनरथपुरुषवत् :**— वनस्थ पुरुषों की भाँति केवल स्वाभाविक ज्ञान के सहारे ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता ।

(3) **न क्रमानुक्रमज्ञानोत्पत्ति : प्रत्यक्षानुपपत्तेः** — प्रत्यक्ष में असिद्ध होने से ज्ञानोत्पत्ति होनी संभव नहीं ।

(4) **न प्रकृत्यादेः जडत्वात्**— जड़ होने के कारण प्रकृति आदि से ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

(5) **न सांहत्येऽपि प्रत्येकादृष्टेः** — एक-एक में न देखे जाने से संघात में ज्ञान होना संभव नहीं ।

(6) **नेश्वरीयज्ञानमन्तरा स्वाभाविकज्ञानोपयोगित्वं सूर्यमन्तरा चक्षुर्वत्** — सूर्य के बिना नेत्र की भाँति ईश्वरीय ज्ञान के बिना स्वाभाविक ज्ञान का उपयोग नहीं।

(1) मानव बुद्धि जड़ वस्तु होने से किसी अन्य से प्रेरणा की अपेक्षा रखती है। बुद्धि-जीव में एक जन्मजात, ज्ञान-अर्जित करने की शक्ति है। इसलिए मनुष्य में यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि उसे स्वतः ज्ञान की उपलब्धि नहीं होती । मनुष्य को आरंभ में गुरु-ज्ञान प्राप्त हो जाए तो वह अपने अनुभव, मनन, चिंतन, संवेदन और बुद्धि के द्वारा उस ज्ञान का विकास कर सकता है। अर्थात् पशुओं की भाँति केवल स्वाभाविक ज्ञान के आश्रित न रहकर वह नैमित्तिक ज्ञान के सहारे ज्ञान की सीढ़ी पर चढ़ते हुए चलने में समर्थ हो जाता है। मनुष्य योनि की यही विशेषता है। इसी अवस्था में मनुष्य की सार्थकता है। यही एक ऐसी योनि है, जिसमें जीवन को विकास का अवसर मिलता है, परंतु मनुष्य में यह

में अनेक प्रमाण हैं। उदाहरण के रूप में कठ तथा बृहदारण्यकादि उपनिषदों में मोक्ष का निरूपण इस प्रकार किया गया है।

मोक्ष का स्वरूप :-

यदि पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ।।

अर्थ - जब जीव का मोक्ष होता है तब पाँच ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान मन के साथ अर्थात् दिज्ञान के साथ स्थिर हो जाता है और बुद्धि कुछ भी चेष्टा नहीं करती है अर्थात् शुद्ध ज्ञानस्वरूप जीवात्मा, परमात्मा में परमानन्दस्वरूपयुक्त होके सदा आनन्द में रहता है। उसी को परमगति अर्थात् मोक्ष कहते हैं। अन्यत्र भी ऐसा ही कहा है –

'परमज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते' (बृहदा0)

परम ज्योति जो परमात्मा उसको अन्यन्त्र समीपता को प्राप्त अर्थात् अविद्यादि दोषों से पृथक् होकर शुद्ध, ज्ञानस्वरूप और स्वसामर्थ्यवाला जीव मुक्त हो जाता है।' **'भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्'** यह वेदान्त दर्शन का सूत्र है। इसमें जैमिनि मुनि का ऐसा मत है कि जैसे मोक्ष में मन जीव के साथ रहता है वैसे इन्द्रियों तथा स्वशक्तिस्वरूप शरीर का सामर्थ्य भी मोक्ष में रहता है अर्थात् शुद्ध स्वाभाविक सामर्थ्ययुक्त जीव मोक्ष में रहता है। इस प्रकार अनेक प्रमाण हैं कि मोक्ष में जीव का लय नहीं होता किन्तु अत्यन्तानन्दरूप जीव रहता है। एक अन्य प्रमाण देते हैं –

जीव ही कर्त्ता, भोक्ता है – दूसरी यह बात कि इस शरीर में कर्त्ता और भोक्ता जीव ही है क्योंकि अन्य सब बुद्ध्यादिक जड़पदार्थ, जीवाधीन हैं सो पाप और पुण्य का कर्त्ता और भोक्ता जीव से भिन्न कोई नहीं क्योंकि व्याससूत्र, बृहदारण्यकादि उपनिषद् तथा वेदादि शास्त्रों में यही सिद्धान्त है । अनुभव से भी जीवात्मा ही कर्त्ता और भोक्ता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि केवल इन्द्रियाराम होके विषयभोग रूप स्व-मतलब साधने के लिए यह बात बनाई गयी है कि जीव अकर्त्ता, अभोक्ता और पुण्य-पाप से रहित है। यह बात नवीन वेदान्ती लोगों की मिथ्या ही है।

जगत् मिथ्या नहीं है – तीसरे इनकी यह बात कि जगत् को मिथ्या कल्पित कहते और मानते हैं, सो इनका केवल अविद्यान्धकार का माहात्म्य है। इस जगत् को सत्य सिद्ध करने में एक प्रमाण पर्याप्त होगा – '**सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सदायतना सत्प्रतिष्ठा।**' यह छान्दोग्योपनिषद् का वचन है। इसका अर्थ है कि जिसका मूल सत्य है उसका वृक्ष मिथ्या कैसे होगा ? इसी प्रकार जो परमात्मा का सामर्थ्य जगत् का कारण है, सो नित्य है क्योंकि परमात्मा नित्य है तो उसका सामर्थ्य भी नित्य है। उसी से यह जगत् उत्पन्न हुआ है, सो यह किसी प्रकार से भी मिथ्या नहीं हो सकता ।

जीव का ब्रह्म में लय नहीं होता – चौथी इनकी यह बात है कि ये जीव का ब्रह्म मे लय मोक्ष-समय में मानते हैं। जैसे समुद्र में पानी की बूँद मिल जाती है, उसी प्रकार मोक्ष में जीव, ब्रह्म में मिल जाता है। इनकी यह बात भी मिथ्या है। इसके मिथ्या होने

विकास स्वतः नहीं होता, समुचित साधनों के रूप में नैमित्तिक ज्ञान के द्वारा ही यह संभव होता है। इसी को सूक्ष्म 'शतपथ ब्राह्मण' में कहा है – मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद। अर्थात् माता, पिता और आचार्य की सहायता से ही मनुष्य ज्ञानवान् होता है।

अफ्रीका में गृहीतजन्म हब्शीपुत्र को इंगलैंड में लाकर वहीं किसी गृहस्थ में रखकर उसका पालन-पोषण किया जाए तो वह अंग्रेजों की भाँति व्यवहार करेगा । इसके विपरीत यदि किसी अंग्रेजी बालक का अफ्रीका के किसी हब्शी परिवार में पालन-पोषण किया जाए तो वह हब्शियों जैसे व्यवहार करेगा। गुजरात में उत्पन्न बालक गुजराती और बंगाल में उत्पन्न बालक बंगला बोलता है। इस सबका कारण यही है कि जहाँ जिसको जैसे सीखने का अवसर मिलता है, वह वैसा ही सीखता और व्यवहार करने लगता है। जंगली जातियों में ही नहीं, आधुनिक सभ्य-सुशिक्षित समाज में किसी बड़े-से-बड़े विद्वान् का बालक भी बिना पढ़े विद्वान् नहीं बन जाता । प्रत्येक मनुष्य को जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत दूसरों के संबंध या संपर्क से ही ज्ञान प्राप्त करते रहना पड़ता है।

कभी-कभी सुनने में आता है कि चार-पाँच वर्ष का बालक जिसने पंजाबी घराने में जन्म लिया है, धाराप्रवाह संस्कृत तथा धड़ाधड़ गीता-रामायण आदि के श्लोक बोलता है। सामान्यतः मनुष्य जिस भाषा को इस जन्म में सीखता है उसी का व्यवहार करता है। इसके विपरीत आचरण असंभव है। परंतु मनुष्य की

आत्मा अनादि काल से जन्म पर जन्म ग्रहण करती आ रही है। पूर्व जन्मों के संस्कार आत्मा पर अंकित रहते हैं । संस्कार से स्मरण और स्मरण से प्रवृत्ति होती है, यह एक मनौवैज्ञानिक तथ्य है। यदि कोई बालक बिना सीखे संस्कृत या चीनी भाषा बोलता है तो निश्चय ही यह उसके किसी पूर्वजन्म के अभ्यास का परिणाम है, इसी के संस्कारों की स्मृति उद्बुद्ध हो जाने से वह संस्कृत या चीनी बोलने लग गया। यदि ऐसा न होता तो वह संस्कृत या चीनी ही क्यों और भी कितनी भाषाएँ बोलने में समर्थ होता। आदि जगद्गुरु शंकराचार्य जैसों के थोड़ी-सी आयु में महान् पांडित्य प्राप्त करने में भी पूर्वजन्मों में उपार्जित ज्ञान ही कारण है।

(2) मात्र स्वाभाविक ज्ञान के सहारे मनुष्य का काम नहीं चल सकता, क्योंकि वनस्थ पशुओं की भाँति, केवल स्वाभाविक ज्ञान के सहारे मनुष्य को ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता, पशु-पक्षी हो या मनुष्य-जीवमात्र स्वाभाविक ज्ञानयुक्त है। स्वाभाविक अथवा नैसर्गिक ज्ञान की दृष्टि से मनुष्य पशुओं से पीछे है। पशु पैदा होते ही तैरने लगेगा। इसके विपरीत नदी के किनारे रहने वाले और जीवनभर मल्लाह का काम करते रहने वाले अथवा तैरने के अभ्यस्त मनुष्य का बच्चा भी बिना सीखे नहीं तैर सकेगा। तैरने की कौन कहे, जब तक उसे अंगुली पकड़कर चलाया नहीं जाएगा, तब तक वह चल भी नहीं सकेगा।

स्वाभाविक ज्ञान नैमित्तिक ज्ञान की प्राप्ति में सहायक तो हो सकता है, परंतु स्वयं वही विकसित होकर मनुष्य के व्यवहारादि

भी अत्यन्त सूक्ष्म तथा वही सत्य है। हे श्वेताकेता ! यही सब जगत् का अन्तर्यामी आधारभूत, सर्वाधिष्ठान है। सो ब्रह्म सनातन, निर्विकार, सत्यस्वरूप, अविनश्वर है। हे श्वेतकेतो, जो सर्वात्मा है सो तेरा भी अन्तर्यामी अधिष्ठान आत्मा वही है।

यहाँ भी सर्वशक्तिमत्व भ्रान्ति आदि दोषरहित ब्रह्म का सम्भव जीव में कभी नहीं हो सकता क्योंकि जीव अल्पशक्तिमत्व भ्रान्ति आदि दोषों से युक्त है। इससे जीव–ब्रह्म की एकता मनाना केवल भ्रान्ति है।

(4) **अयमात्मा ब्रह्म** – चौथा 'अयमात्मा ब्रह्म' इसको अथर्ववेद का वाक्य बतलाते हैं। यह अथर्ववेद का वाक्य तो नहीं, माण्डूक्योपनिषदादिकों का है। इस बात का तो स्पष्ट अर्थ है कि विचारशील पुरुष अपने अन्तर्यामी को प्रत्यक्ष ज्ञान से देखके कहता है कि जो मेरा अन्तर्यामी है, यही ब्रह्म है। अर्थात् मेरा भी यह आत्मा है। अपने उपास्य का प्रत्यक्षानुभव-विधायक जीव के समझने के लिए यह वाक्य है।

(5) **सर्वं खल्विदं ब्रह्म** – यह छान्दोग्योपनिषद् का वचन है इसका अर्थ भी तात्स्थ्योपाधि से करना चाहिए। जैसे कि 'मञ्चाः क्रोशन्ति' का अर्थ – 'मञ्च पर बैठे हुए पुरुष चिल्ला रहे हैं', यह होता है, उसी प्रकार उक्त वाक्य का यह अर्थ है कि यह सब जगत् ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मस्थ है। अथवा यह प्रत्यक्षान्तर्यामी जो चेतन सो केवल एकरस ब्रह्म वस्तु है। इसमें कोई दूसरी चीज मिली नहीं जैसे किसी ने कहा कि यह सब घृत है अर्थात् तैल आदि से मिश्रित नहीं है वैसे उस ब्रह्म की उपासना शान्त होकर जीव करे, और किसी की नहीं

नहीं होता किन्तु उसको सदैव स्थिर सुख रहता है।

सृष्टि के आदि में एक सर्वशक्तिमान ब्रह्म ही वर्त्तमान था सो अपने आत्मा को 'अहं ब्रह्मास्मीति सदैवावेत्' स्वस्वरूप का विस्मरण उसको कभी नहीं होता। उस परमात्मा के सामर्थ्य से सब जगत् उत्पन्न हुआ, ऐसा विद्वानों के बीच में से जो जानता है वही ब्रह्मानन्द-सुखमुक्त होता है।

जैसे आकाश में घड़ा भिन्न नहीं होता तथा आकाश घड़े से भिन्न नहीं होता और आकाश तथा घड़ा एक भी नहीं किन्तु पृथक्-पृथक् हैं इसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा व्याप्य-व्यापक-सम्बन्ध से भिन्न वा अभिन्न नहीं हो सकते। परमेश्वर के ध्यान में तत्पर जिसे भी यह ज्ञान होगा वह भी इस प्रकार जानेगा 'य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति' मैं ब्रह्म हूँ अर्थात् ब्रह्मस्थ हूँ कि मेरे बाहर और भीतर ब्रह्म ही व्यापक है। यही इस 'अहं ब्रह्मास्मि' का अभिप्राय है।

(3) तत्वमसि – 'तत्त्वमसि' यह भी सामवेद का वचन नहीं किन्तु सामवेदान्तर्गत छान्दोग्यापनिषद् का वचन है। इसका भी पूर्वापर प्रकरण छोड़कर नवीन वेदान्तियों ने अनर्थ कर रक्खा है। उपनिषद् में ऐसा प्रकरण है कि –

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेता इति ।

उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु को उपदेश देते हैं कि सो पूर्वोक्त परमात्मा सब जगत् की आत्मा है। यह कैसा है कि जो 'अणिमा' अत्यन्त सूक्ष्म है कि प्रकृति, आकाश और जीवात्मा से

के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता। स्वाभाविक ज्ञान से युक्त बच्चों को भी पढ़ने के लिए अध्यापक के पास जाना पड़ता है। यदि स्वाभाविक ज्ञान के सहारे मनुष्य अपने अनुभवमात्र से ज्ञान प्राप्त कर सकता तो जंगलों में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति बिना पढ़े गणित या व्याकरण का आचार्य, डॉक्टर, इंजीनियर और विज्ञानवेत्ता बन गया होता । परंतु अफ्रीका, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया के द्वीपों में जहाँ शिक्षा की व्यवस्था नहीं है, हजारों-लाखों वर्षों से बसे हुए हब्शी लोग आज भी पशुवत् जीवन व्यतीत कर रहे हैं। भारत के भी सुदूर पर्वतीय प्रदेशों और जंगलों में रह रही भील, संथाल, नागा आदि जातियाँ अभी तक असभ्य बनी हुई हैं। कौन कह सकता है कि उनमें संवेदना या चिंतन का अत्यंताभाव है। यदि स्वभाव से मनुष्य उन्नति करता तो उसकी दशा अब तक ज्यों की त्यों क्यों बनी रहती ? दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि जैसे -जैसे शिक्षित और सभ्य देशों के लोग इन पिछड़े प्रदेशों में जाकर स्कूल आदि की व्यवस्था करते जाते हैं, वैसे-वैसे वे लोग शिक्षित होते चले जाते हैं। जो काम स्वतः लाखों-करोड़ों वर्षों में न हुआ, वह प्रयत्न करने पर कुछ दशकों में हो गया।

वर्तमान समाज शास्त्री भी यह स्वीकार करते हैं कि मनुष्य, जैसे भी हो, समाज से ज्ञान ग्रहण करता है। इसलिए आज भी यदि किसी मानव को समाज से पृथक कर दिया जाए तो वह सर्वथा अज्ञ रह जाएगा और उसका व्यवहार पशुवत् होगा। जो परीक्षण किए गए उनसे यह पता चला कि यदि किसी मनुष्य को पैदा होते ही अपने माता-पिता और मानव-समाज से पृथक् करके

पशुओं की संगति में रख दिया जाए तो वह पशुओं की भाँति ही व्यवहार करेगा। वैसी ही बोली बोलेगा और वैसे ही चले-फिरेगा। आकृति के सिवा उस मानव शिशु में और उन पशुओं में कोई अंतर नहीं होगा। सुदूर अतीत में सीरिया के राजा बनीपाल, यूनान के बादशाह सेमिटिकल फैड्रिक द्वितीय और इंगलैंड के बादशाह जेम्स चतुर्थ ने दस-बारह बच्चों को निर्जन स्थान में रखा और उनकी देखभाल के लिए नियुक्त व्यक्तियों को उनके सामने किसी प्रकार का मानवोचित व्यवहार करने से मना कर दिया। ठीक इसी प्रकार का एक प्रयोग अकबर ने भी किया था। ये बच्चे न मनुष्यों की तरह बोल सकते थे, न चल सकते थे और न ही खा-पी सकते थे। सन् 1938 में एक अवैध अमेरिकन बच्चे का अध्ययन करने के लिए छह मास की अवस्था में उसको एक कमरे में बंद कर दिया गया। चार वर्ष की अवस्था होने पर उसका अध्ययन करने पर पता चला कि उसमें चार वर्ष की आयु वाले मानव का कोई लक्षण नहीं था। जन्म के तत्काल बाद से ही भेड़िए की माँद में पलने वाले रामू और कमला की कहानी तो देश-भर में चर्चा का विषय बनी रही। ये बच्चे भेड़ियों की भाँति चारों हाथों-पैरों से चलते थे और बोलने के नाम पर भेड़ियों की तरह गुर्राते थे। मानव-समाज से दूर पशुओं के बीच रहकर वे भी पशु ही बन गए थे।

आहार, निद्रा, भय, मैथुन, आत्मसंरक्षण विषयक पशु-जगत् का काम तो नैसर्गिक ज्ञान से चल सकता है; परंतु धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जिसके जीवन का लक्ष्य है वह मनुष्य नैमित्तिक ज्ञान के

(2) 'अहं ब्रह्मस्मि' इस वाक्य का वेदान्ती ऐसा अर्थ करते हैं कि मैं ब्रह्म हूँ, अर्थात् भ्रान्ति से मैं जीव बना था सो मैंने जान लिया कि मैं साक्षात् ब्रह्म हूँ। यह अनर्थ इनका बिल्कुल खोटा है क्योंकि पूर्वापर ग्रन्थ का सम्बन्ध देखे बिना चोर की तरह बीच में से टुकड़ा लेके अपने मतलब का अर्थ करके स्वार्थसिद्ध करते हैं। देखो इस वचन का पूर्वापर–सम्बन्ध इस प्रकार है –

ब्रह्म वाऽइदमग्र आसीत् तदात्मानमेवावेदाहं ब्रह्मास्मीति तस्मात्तत् सर्वमभवद्यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्तथर्षोणां तथा मनुष्याणाम। - शत0 14।3।2।21

इस प्रकरण में यह है कि जब जीव परमेश्वर की उपासना करें और किसी की नहीं क्योंक सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी जो परब्रह्म है वह सबसे प्रियस्वरूप है, उसी को जानना। मित्र, धन, पुत्र आदि सब जगत् के पदार्थों से वही प्रियत्तर है आत्मा का अन्तर्यामी परमात्मा है जो कि सबका आत्मा है। जो कोई इस आत्मा से अन्य को प्रिय कहता है उसके प्रति कहे कि तू परमात्मा से अन्य को प्रिय बतलाता है (1) सो तू दुःखसागर में गिरके सदा रोवेगा, (2) और जो कोई परमात्मा को छोड़ के अन्य की उपासना वा प्रीति करेगा सो सदा रोवेगा, (3) जो पाषाणादि जड़पदार्थों की उपासना करेगा वो सदा रोवेगा।

और जो सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, निराकार, अज इत्यादि विशेषणयुक्त परमात्मा की उपासना करता है वह इस जन्म तथा परजन्म तथा मोक्ष में सर्वानन्द को प्राप्त होता है। यह जो परब्रह्म का उपासक है, उसका आनन्द सुख कभी नष्ट

नवीन वेदान्त की मान्यताएँ – (1) एक बात इनकी यह है कि जीव को ब्रह्म मानना, (2) दूसरी यह कि स्वयं पाप कर और कहें कि हम अकर्त्ता और अभोक्ता हैं, (3) तीसरी बात यह है कि जगत् को मिथ्या कल्पित मानते हैं, (4) ये मोक्ष में जीव का लय मानते हैं तथा न वास्तव में मोक्ष न बंध इत्यादि इनकी अनेक मिथ्या बातें हैं । परन्तु नमूने के लिए इन चार बातों का मिथ्यात्व संक्षेप में दिखलाते हैं –

(1) जीव को ब्रह्म मानने में प्रथम इस वाक्य का प्रमाण देते हैं कि 'प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इसको ऋग्वेद का वाक्य कहते हैं किन्तु ऋग्वेद के आठों अष्टकों में यह कहीं नहीं है। वेद का व्याख्यान तो ऐतरेय ब्राह्मण उसमें यह वाक्य है, सो वहाँ पर ऐसा पाठ है 'प्रज्ञानं ब्रह्म'। इस वाक्य में ब्रह्म का स्वरूप निरूपण किया गया है कि 'प्रकष्टं ज्ञानं यस्मिन् तत् प्रज्ञानम्' अर्थात् 'प्रकृष्ज्ञानस्वरूपम्' अर्थात् जिसमें प्रकृष्ट सर्वोत्तम अनन्त ज्ञान है वह प्रज्ञान कहावे। अर्थात् प्रकृष्टज्ञानस्वरूप प्रज्ञान विशेषण से ऐसा निश्चित हुआ कि जिसको कभी अविद्यान्धकार अज्ञान के लेशमात्र का भी नहीं होता, न हुआ और न होगा।

ब्रह्म जो सबसे बड़ा और सब जगत् का बढ़ानेवाला, स्वभक्तों को अनन्त मोक्ष-सुख से अनन्तानन्द में मोक्ष-सुख बढ़ाने वाला तथा व्यवहार में भी बड़े सुख का देनेवाला है, ऐसा परमात्मा का स्वभाव और स्वरूप है। इस वाक्य का नाम महावाक्य नवीन वेदान्तियों ने रखा सो अप्रमाण है क्योंकि किसी ऋषिकृत ग्रन्थ में इनका 'महावाक्य' नाम नहीं लिखा।

बिना आगे नहीं बढ़ सकता ।

(3) कहा जा सकता है कि यद्यपि एक मनुष्य अपने जीवन-काल में स्वतः ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता, तथापि वंशानुक्रम से धीरे-धीरे विकास करता हुआ वह ज्ञान का संचय कर लेगा। इस युक्ति के प्रत्याख्यान में कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष में असिद्ध होने से क्रमशः ज्ञानोत्पत्ति होना संभव नहीं है।

वर्तमान में विकासवाद एक महत्त्वपूर्ण शास्त्र बन गया है। वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दोनों ही विचारधाराओं में प्राणियों की विभिन्न जातियों की उत्पत्ति में विकासवाद को मान्यता प्रदान की जाती है और ऐतिहासिक विचारधारा में मानवी बुद्धि के विकास अथवा ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धि में विकासवाद को आधार माना जाता है। इसी के अनुसार यह कहा जाता है कि मनुष्य की बुद्धि-ज्ञान व अनुभव के द्वारा धीरे-धीरे विकसित होकर-स्वतः ज्ञान-प्राप्ति में समर्थ हो जाती है। साधारण दृष्टि से देखने पर इसका खोखलापन स्पष्ट हो जाता है।

दीपक पर पतंगा आता है और जल जाता है। जब से दीपक और पतंगा हैं, तभी से ऐसा होता आ रहा है। पतंगों के लाखों करोड़ों वर्षों के अनुभव ने उन्हें वह ज्ञान नहीं दिया, जिससे वे भविष्य में जलने से बच जाते । सिखाने से तो सर्कस में बंदर, घोड़े, हाथी आदि पशु कई प्रकार के करतब दिखा देते हैं, परंतु स्वतंत्र रूप में उनका आचरण आज भी वैसा ही है, जैसा, आज से लाखों-करोड़ों वर्ष पहले था। मनुष्योचित व्यवहार का प्रदर्शन करने में दक्ष चिंपांजी भी चिड़ियाघर में आकर ही कुछ सीख

पाता है। और वहाँ भी यही नियम कार्य कर रहा है। कोई कुल कितना ही शिक्षित और ज्ञानयुक्त हो और कितनी ही पीढ़ियों से उसमें शास्त्रों का ज्ञान परंपरा से चला आता हो, उस कुल की संतति भी बिना स्वयं पढ़े-लिखे विद्वान् बन जाए, यह संभव नहीं। ज्ञान का यदि क्रमिक विकास होता तो भावी संतति में वह स्वतः संक्रमण करता रहता। यदि कहीं किन्हीं दो सहोदर भाईयों में से एक की शिक्षा की समुचित व्यवस्था कर दी जाए और दूसरे को उस शैक्षणिक व्यवस्था से दूर रखा जाए, तो दूसरा एक ही वंश-परंपरा में सगा भाई होने पर भी मूर्ख रह जाएगा । ज्ञान-प्राप्ति का नैमित्तिक साधनों पर अवलंबित होना इसमें कारण है।

यदि जीवात्मा स्वभावतः उन्नति करता होता तो सृष्ट्युत्पत्ति के लाखों-करोड़ों वर्ष बीतने पर अब तक तो ज्ञान की पराकाष्ठा हो गई होती, बहुत से सर्वज्ञ हो गए होते, स्कूल-कॉलेज कभी के बंद हो गए होते, किंतु वास्तविकता यह है कि यदि आज भी बच्चे को स्वतंत्र छोड़ दिया जाए तो वे उन्नति के स्थान पर अवनति करने लगेंगे। ऊपर चढ़ने की भाँति उन्नति भी परिश्रम और तपस्या माँगती है और मनुष्य उनसे बचना चाहता है, क्योंकि वह स्वभाव से सुगमता व सरलता को पसंद करता है। वर्त्तमान युग की तथाकथित उन्नति मानव के गुणों के विकास का नहीं, उसके सुख, सुगमता और सरलता का, इतिहास है। मनुष्य के मानवीय गुणों का ह्रास हो रहा है। आदिमानव मानवीय सामर्थ्य में आज के मनुष्य से अधिक उन्नति था, यह निर्विवाद है। इसकी साक्षी किसी ऐसे मानवीय व्यवहार में ढूँढ़ी जा सकती है, जिसका

22

महर्षि दयानंद द्वारा रचित लघु ग्रंथ
वेदान्तध्वान्त–निवारण

इसके अन्तर्गत महर्षि दयानन्द ने नवीन वेदान्त मत का खण्डन किया है। महर्षि जी ने इसको नवीन वेदान्त इसलिए कहा है कि प्राचीन वेदान्त तो व्यास मुनिकृत वेदान्तदर्शन है जिसमें ब्रह्म-विषयक जिज्ञासा की गयी है। उस पर न चलकर नवीन वेदान्तियों ने कपोलकल्पित अनेक ग्रन्थ बना लिए हैं। ये लोग इस वर्त्तमान जगत् को मिथ्या मानते हुए 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का राग अलापते हैं तथा 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' आदि वाक्यों द्वारा जीव तथा ब्रह्म को एक ही मानकर अन्त में 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् अपने आप को ही ब्रह्म मानने लगते हैं जो किसी भी युक्ति, प्रमाण से सिद्ध नहीं है। अपने आपको ब्रह्म मानने से इनको हठ, अभिमान आदि अनेक दोष लगते हैं। इसीलिए महर्षि ने लिखा है –"नवीनतर वेदान्ती लोग कपोलकल्पित अर्थ अनर्थ रूप करके जगत् की हानि मात्र कर लेते हैं तथा मनुष्यों को हठ, अभिमान आदि दोषों से युक्त कराके दुःखसागर में डुबो देते हैं सो केवल अल्पज्ञानी लोग इनके उपदेश-जाल में फँसके मत्स्यवत् मरणक्लेशयुक्त होके अधर्म, अनैश्वर्य और पराधीनतादि दुःखरूप कारागृह में सदा बद्ध रहते हैं।

(अ) न्याय और परिश्रम से धन कमाना।

(आ) अहिंसा-पालन अर्थात् किसी का शरीर या मन न दुखाना।

(इ) मांस-शराब आदि अभक्ष्य पदार्थ न खाना न पीना ।

(ई) अच्छे लोगों की संगति।

(उ) उत्तम ग्रन्थों का स्वाध्याय।

(ऊ) निन्दा, बैर, कलह, घृणा, जलन आदि विचारों का त्याग।

(ए) मानव-मात्र से प्रेम और ईश्वर पर अटल विश्वास।

वास्तव में शुद्धता चरित्र का सबसे बड़ा आधार है। मन की शुद्धि और तन की शुद्धि में सभी अच्छे गुण आ जाते हैं। इसी प्रकार वचन की शुद्धता सत्य है। इस प्रकार नैतिकता का सार है – शुद्धता। हम सबको तन, मन और वचन को शुद्ध रखने का अभ्यास करना चाहिए।

आदिमानव में होना प्रमाणित हो और जो आज भी विद्यमान हो। वह है भाषा-विज्ञान। वैदिक भाषा संस्कृत से और संस्कृत ग्रीक, लैटिन इत्यादि भाषाओं से विविध उच्चारणों को अंकित करने में अधिक सक्षम, अधिक समर्थ और अधिक गठित थी। वर्तमान भाषाएँ उच्चारण करने में सुगम और स्मरण करने में सुसाध्य तो हैं, परंतु उनमें न तो प्राचीन भाषाओं का लालित्य है, न भाव-अभिव्यक्ति की क्षमता और न थोड़े शब्दों में बड़ी बात कहने की सामर्थ्य ही है। वस्तुतः आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक सभी दृष्टियों से आज की तुलना में आदिमानव कहीं अधिक उन्नत था।

(4) यह कहा जाता है कि जैसे ज्ञान से ज्ञेय जाना जाता है वैसे ही ज्ञेय सृष्टि के गुणों से ज्ञान की उपलब्धि हो सकती है, ईश्वरीय ज्ञान न भी हो तो मनुष्य प्रकृति से बहुत कुछ सीख सकता है । इसका प्रतिवाद करते हुए कहा गया है कि जड़ होने के कारण प्रकृति आदि से ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

प्रकृति से ज्ञान-प्राप्ति की बात सुनने में तो बड़ी अच्छी लगती है, परंतु यथार्थ में इसमें कुछ भी तथ्य नहीं है। प्रकृति तो स्वयं जड़ है। जब उसी के पास ज्ञान नहीं तो वह दूसरों को कहाँ से देगी ? यदि प्रकृति मनुष्य को ज्ञान दे सकती तो लाखों वर्षों से प्रकृति की खुली पुस्तक सामने रहने पर भी भील, संथाल, नागा, हब्शी आदि असभ्य, अशिक्षित क्यों बने रहते ? और यदि मनुष्य सचमुच प्रकृति की शिक्षा पर चलने लगे तो प्रकृति के अनुगामी पशुओं की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का अनुकरण करने लगेगा तथा

पशु-जगत् की भाँति मनुष्य समाज भी सर्वत्र मत्स्यन्याय तथा मातृगमन व स्वसृगमनादि में प्रवृत्त होगा। तब उसमें मानवता कहाँ रह जाएगी ?

वस्तुतः प्रकृति भी नैमित्तिक साधनों से शिक्षित (वर्तमान जन्म में अथवा पूर्व जन्म में) व्यक्ति के सामने ही अपने रहस्य खोलती है। सेब को गिरता देखकर पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति का ज्ञान न्यूटन जैसे वैज्ञानिकों को ही हुआ, हर किसी को नहीं। प्रकृति का सहयोग सामर्थ्यवान् को ही मिलता है। संसार में होने वाली घटनाएँ भी सामर्थ्यवान् को ही शिक्षा देती हैं। आदमी को मरता देखकर अथवा अर्थी पर जाता देखकर दयानंद तथा बुद्ध की तरह कोई घर से नहीं निकल पड़ता ।

संसार में रूप-ज्ञान तो पशु-पक्षी आदि सभी जीवों को प्राप्त है, पर उनको प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुमानादिजन्य ज्ञान, कारण को देखकर कार्य का ज्ञान अथवा लिंग का बोध नहीं होता। परंतु परीक्षणों से यह प्रमाणित हो चुका है कि प्रशिक्षण और अभ्यास से कुछ हद तक यह संभव है । इससे भी यही सिद्ध होता है कि बिना निमित्त के सामान्य ज्ञान से विशेष ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती। सृष्टि के कार्यों को देखने मात्र से ज्ञान की वृद्धि होनी संभव नहीं। प्राकृतिक जगत् भी तो ज्ञेय अर्थात् जानी जा सकने वाली सामग्री ही है, परंतु दीवार पर टँगे नक्शे अथवा मॉडल को देखकर भी अध्यापक के बताए बिना उसका ज्ञान नहीं होता। इस प्रकार प्राकृतिक जगत् से भी किसी निमित्त के बिना कुछ नहीं जाना जा सकता ।

(छ) अपने नाखून और बाल उचित समय पर काटें।

(ज) कुएँ, तालाब और नल पर गन्द न फैलाएँ।

(झ) धोती-कुर्ते से मुँह-नाक आदि न पोछें।

(ञ) कागज व कूड़ा-कर्कट इधर-उधर न बिखेरें।

(ट) शुद्ध वायु और शुद्ध आहार का सेवन करें।

(ठ) मक्खी, मच्छर तथा रोग फैलाने वाले किटाणुओं से बचें।

शुद्धि का दूसरा रूप भीतर की शुद्धि है – अर्थात् विचारों व मन-बुद्धि की पवित्रता। पवित्रता का अभिप्राय है –मन में मैल न होना। मन की मैल कौन-सी है ? गन्दे विचार मन की मैल हैं, अर्थात् घृणा, द्वेष, हिंसा, अभिमान, कामवासना, क्रोध, लोभ, चोरी आदि। इन गंदे विचारों को धोने से ही मन पवित्र और शुद्ध हो सकता है। शरीर का मैल तो साबुन से कटता है, पर मन का मैल किससे कटता है ?

पंतजलि ऋषि ने मन या विचारों की शुद्धि के तीन उपाय बताये हैं '

(क) सुखी मनुष्यों से प्रेम और मित्रता का व्यवहार

(ख) दुखी मनुष्यों से दया व सहानुभूति का व्यवहार

(ग) भले व ऊँचे लोगों के प्रति प्रसन्नता व आदर।

मनु आदि महापुरुषों ने विचार-शुद्धि के कुछ अन्य उपाय भी बताए हैं :

21

महान् गुण :

तन-मन-वचन की शुद्धता

''शरीर पानी से शुद्ध होता है, मन सत्य से शुद्ध होता है, आत्मा विद्या और तप से शुद्ध होती है तथा बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।'' मनु महाराज

शुद्धता दो प्रकार की है - बाहरी और भीतरी । जो व्यक्ति दोनों प्रकार से शुद्ध है वही पवित्र माना जाता है, अन्य नहीं । बाहरी शुद्धि का अभिप्राय है – शरीर और स्थान की शुद्धि। शरीर की शुद्धि के अनेक साधन हैं – शुद्ध जल, मिट्टी, साबुन, औषधियाँ, अग्नि आदि। शरीर की शुद्धि के लिए ध्यान रखने योग्य बातें हैं :

(क) रूमाल में नाक छिनक कर जेब में न रखें।

(ख) मल-मूत्र, थूक आदि जहाँ-तहाँ न फेंके-फैलाएँ।

(ग) साफ कपड़े पहनें, भले ही वे सादे और सस्ते हों

(घ) पुस्तकें और कापियाँ साफ व सुन्दर रखें।

(ड़) नाक, कान और दाँतों का मल जब-तब न कुरेदते रहें।

(च) भोजन आदि के पश्चात् हाथ-मुँह साफ करें।

(5) मनुष्य सामाजिक प्राणी है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि सब मिलकर पारस्परिक आदान-प्रदान से ज्ञान का संग्रह कर लेंगे, परंतु यह भी संभव नहीं है, क्योंकि एक-एक में न देखे जाने से संघात में भी ज्ञान होना संभव नहीं।

बहुतों की अल्पज्ञता व उनके सामान्य ज्ञान से भी विशेष ज्ञान का उद्‌भव नहीं हो सकता। बुझे हुए सैकड़ों दीपक एक साथ मिलकर भी प्रकाश नहीं दे सकते । पशुओं का उदाहरण हमारे सामने है। स्वाभाविक ज्ञान सबमें होने पर भी लाखों भेड़-बकरियाँ कार्य करने में असमर्थ हैं। गाय-घोड़े मिलकर सामूहिक बुद्धि के सहारे आज तक एक औषधालय तक नहीं खोल सके। नौ अयोग्य छात्रों के अपूर्ण ज्ञान को एकत्र करके भी वह ज्ञान उपलब्ध नहीं होता जो दसवें एक ही योग्य छात्र के द्वारा हो सकता है। स्पष्ट है कि जब तक नैमित्तिक ज्ञान का सहारा न हो, तब तक जीवों के सामान्य ज्ञान से विशेष ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। अतः बहुत से जीवों के परस्पर संपर्क वा मेल से ज्ञानोत्पत्ति होकर शिक्षा में चालू नहीं हो सकता।

(6) नैमित्तिक ज्ञान के बिना स्वाभाविक ज्ञान भी व्यर्थ है । स्वाभाविक ज्ञान को भी सहायता की आवश्यकता है। क्योंकि सूर्य के बिना नेत्र की भाँति ईश्वरीय ज्ञान के बिना स्वाभाविक ज्ञान का कोई उपयोग नहीं।

प्रत्येक ज्ञानेंद्रिय को बाह्य सहायता की अपेक्षा है। सूर्य अथवा उसके स्थानापन्न दीपक आदि के अभाव में आँख देख नहीं सकती। आकाश के बिना कान, वायु के बिना त्वचा, जल के बिना

जिह्वा और पृथ्वी के बिना घ्राण व्यर्थ है । जिस प्रकार बाह्य सहायता के बिना मनुष्य की बाह्येंद्रियाँ कार्य नहीं कर सकतीं, उसी प्रकार आंतरेंद्रियाँ भी बाह्य सहायता के बिना कार्य नहीं कर सकतीं। अतः जैसे ईश्वर की व्यवस्थानुसार प्राकृतिक नियम ने प्रत्येक ज्ञानेंद्रिय से पूर्व उसका सहायक देवता उत्पन्न किया, उसी प्रकार सर्वोत्तम एवं सूक्ष्म पदार्थों को जानने के साधन बुद्धि की सहायता के लिए वह कोई सहायक प्रदान न करता, भला यह कैसे संभव है ? अतः सृष्टि के आदि में स्वाभाविक ज्ञान के साधन बुद्धि की सहायता के लिए पूर्णज्ञानी परमेश्वर द्वारा ज्ञान का दिया जाना अनिवार्य एवं बुद्धि संगत है। वेद इसी ज्ञान का नाम है और सृष्टि के प्रारंभ में आदिगुरु (परमेश्वर) ने वेद के रूप में संसार को ज्ञान दिया।

जिस प्रकार वर्तमान में हमने माता-पिता आदि से ज्ञान प्राप्त किया है वैसे ही हमारे माता-पिता आदि ने अपने माता-पिता आदि से; उन्होंने भी अपने माता-पिता आदि से और उन्होंने भी अपने माता-पिता आदि से प्राप्त किया होगा। यह क्रम चलते-चलते जब सृष्टि के आदिकाल में अमैथुनी सृष्टि तक पहुँचेगा जहाँ पृथ्वी पर मानव की सर्वप्रथम प्रादुर्भूत पीढ़ी मिलेगी, तब निश्चय ही परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई शिक्षक नहीं मिलेगा। अतः मनुष्यमात्र के कल्याणार्थ आदिगुरु परमेश्वर द्वारा अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न मनुष्यों को वेद के द्वारा नैमित्तिक ज्ञान का मिलना सर्वथा युक्तिसंगत ठहरता है। उन मनुष्यों द्वारा अपनी संतति अथवा शिष्यों में ज्ञान का संक्रमण हुआ। वही क्रम अब तक चला आ रहा

सहपाठियों के साथ व्यवहार स्नेह, आपसी सहयोग और मधुरता का रखें। आप किसी से ईर्ष्या और लड़ाई-झगड़ा न करें। आप रेडक्रास का सदस्य बनिए। प्राथमिक चिकित्सा का प्रशिक्षण लीजिए। छात्र-ससंद और खेल-कूद में बढ़-चढ़कर भाग लीजिए।

समाज में हमारा पड़ोस, नगर, प्रान्त, देश और विदेश सब कुछ आ जाता है। इन सब स्थानों में हम दूसरों की भावनाओं का आदर करें।

1. नागरिक के रूप में जहाँ हम अपने अधिकार के लिए लड़ें, वहाँ अपने कर्तव्य का भी पालन करें।

2. हम सारी मानव जाति को एक समझकर प्रत्येक व्यक्ति से वैसा ही व्यवहार करें जैसा हम अपने साथ चाहते हैं।

3. हम अपने हृदय को संकुचित न बनाएँ अपितु इतना विशाल बनाएँ कि सारा संसार हमें अपना घर दिखाई दे।

4. हम समझते हैं कि प्रत्येक मानव जीवन के अधिकार समान हैं।

हमारा संकल्प - हम माता-पिता और गुरुजनों का आदर करेंगे। उनकी आज्ञा मानेंगे। साथियों, मित्रों, पड़ोसियों को भैया, दीदी आदि मधुर संबोधन से पुकारेंगे। हम काम और आराम के समय शोर न मचाएँगे। हम किसी से भी झगड़ा न करेंगे। हम घर की आय से अधिक खर्च न करेंगे।

की भावनाओं का भी उतना ही आदर करें जितना अपनी भावनाओं का करते हैं। दूसरे शब्दों में हम स्वार्थी न बनें। सरल शब्दों में हम यह समझ लें कि जो बात हमें बुरी लगती है वह दूसरों को भी बुरी लग सकी है। जिससे हमें कष्ट होता है, उससे दूसरों को भी कष्ट पहुँच सकता है। जिस लाभ को हम अपने लिए चाहते हैं, उसकी आवश्यकता दूसरों को भी हो सकती है।

'इस हाथ दे उस हाथ ले' –यही इस दुनिया का नियम है। अतः जैसा व्यवहार हम चाहते हैं कि लोग हमारे साथ करें, वैसा ही व्यवहार हम दूसरों के साथ करें। हम चाहते हैं कि लोग हमारा सम्मान करें तो हमारा कर्तव्य है कि हम दूसरों का सम्मान करें। दूसरों के साथ व्यवहार के तीन क्षेत्र हैं – परिवार, विद्यालय और विस्तृत मानव-समाज।

परिवार में हम माता-पिता का आदर करें। उनकी आज्ञा मानें। उनसे नम्रता और प्रेम का व्यवहार करें। उनकी आय के अनुसार खर्च करें। बाहर जाना हो तो उनसे पूछकर जाएँ ताकि वे चिन्ता न करें। घर के काम में उनका हाथ बटाएँ। हम बड़े भाई-बहन से सहायता लें और छोटे भाई-बहन की सहायता करें। उनके साथ स्नेह-व्यवहार करें। विद्यालय में आपका व्यवहार अध्यापकों और सहपाठियों से होता है। अध्यापकों को आपसे आशा है कि आप आज्ञापालन, नम्रता, अनुशासन और परिश्रम आदि गुणों का विकास करेंगे। आप उनकी इन भावनाओं को पूर्ण करें। उधर

है। इस प्रकार संसार में जितना भी ज्ञान है, उसका आदिस्रोत परमेश्वर ही ठहरता है। इसीलिए महर्षि पतंजलि ने अपने 'योगदर्शन' (१–२६) में **स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्** कहकर परमात्मा को '**गुरूणां गुरुः**' अर्थात् गुरुओं का गुरु बताया है। योगदर्शन के इस सूत्र का आशय यही है कि आदिकाल में जब सर्वप्रथम मानवों का आविर्भाव हुआ तो उनके पथप्रदर्शन के लिए आवश्यक सब बातें परमगुरु परमात्मा ने उनके आत्मा में स्फुरित कर दीं। इस ज्ञानराशि को ही वेद नाम से अभिहित किया जाता है।

☆☆☆

5

व्यक्ति और समाज

व्यक्ति और समाज का आपस में गहरा संबंध है। व्यक्तियों से ही परिवार, राष्ट्र और मानव-समाज बनता है। समाज की पहचान उसके व्यक्तियों के चरित्र पर ही आधारित होती है। आज हमारे देश के व्यक्तियों में स्वार्थ अधिक आ गया है, तो वे पुरानी मान-मर्यादाएँ तोड़ रहे हैं। इससे चरित्र का पतन हो रहा है। इसी चारित्रिक पतन का परिणाम है कि समाज में भ्रष्टाचार बढ़ रहा है और द्वेष फैल रहा है। कुछ लोगों का कहना है कि हमारे शास्त्रों ने चारों और असंतोष और ऊँच-नीच के आधार पर भेदभाव वाला समाज बनाया, जो सर्वथा गलत है। शास्त्रों के अनुसार हम सब ईश्वर के पुत्र हैं। इसलिए हम आपस में भाई-भाई हैं। शास्त्रों ने ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं बनाया।

मध्यकाल में हमारे समाज में कुछ बुराइयाँ आ गई थीं; जो सर्वथा त्याज्य हैं। इन बुराईयों को दूर करने के लिए ही राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, महात्मा ज्योतिबा फुले तथा अन्य कितने ही धर्मात्माओं ने इन कुरीतियों

'मैं' का प्रयोग हम केवल अपने लिए करते हैं – एक व्यक्ति के लिए जो लगभग साढ़े तीन हाथ लंबा, एक हाथ चौड़ा है। इस एक शरीर के घेरे से बाहर सब 'दूसरे' हैं। यहाँ तक दोनों पक्षों में कोई बुराई नहीं। यदि 'मैं' और 'दूसरे' को एक बराबर समझा जाये तो कभी कोई बुराई उत्पन्न ही न हो।

किन्तु दोष तब उत्पन्न होता है जब हम 'मैं' या अपने-आपको विशेष समझते हैं और दूसरों को साधारण। जब हम अपने-आपको पहल देते हैं और दूसरों को पीछे धकेलते हैं। जब हम स्वयं बड़ा हिस्सा खाना चाहते हैं और दूसरों को छोटा हिस्सा देना चाहते हैं। जब हम अपने को ऊँचा और दूसरों को नीचा समझते हैं। इसी ऊँच-नीच और भेद-भाव से भावनाओं में टकराव उत्पन्न होता है। जब एक व्यक्ति स्वयं को सबसे अलग समझकर केवल अपने लिए सोचना और अपने लिए करता है, तो वह दूसरो की भावनाओं और दूसरे के हित को ध्यान में नहीं रखता। इसी का नाम स्वार्थ है। यदि संसार के सभी व्यक्ति अपना-अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहें तो दुनिया के अरबों व्यक्तियों में खींचातानी आरम्भ हो जाएगी। सबके स्वार्थ एक-दूसरे से टकरा जाएँगे। वे एक-दूसरे से छीनकर स्वयं सारे सुख बटोर लेना चाहेंगे। इसका परिणाम होगा युद्ध संघर्ष और रक्तपात।

इस संघर्ष से बचने का एक ही उपाय है – हम दूसरों

20

महान् गुण :

दूसरों की भावनाओं का आदर करना

तुम जैसा व्यवहार अपने साथ चाहते हो उससे उलटा व्यवहार दूसरों के साथ मत करो।

दूसरे कौन हैं ?

जो 'मैं नहीं' वे सब दूसरे हैं – माता-पिता, भाई-बहन, मित्र-बंधु, पास-पड़ोसी, नगर के लाखों नागरिक, देश के करोड़ों देशवासी और संसार के अरबों सांसारिक– वे सब दूसरे हैं। इस प्रकार संसार में दो पक्ष हैं – मैं तथा दूसरे।

को दूर करने का बहुत प्रयास किया और हमें समता का पाठ पढ़ाया।

वैदिक संस्कृति में समाज के सभी वर्गों को समान रूप से देखा जाता है। इस संस्कृति का आधार ही समता है। इसी कारण यहाँ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' – अर्थात् सारी धरती एक ही परिवार है, ऐसा माना जाता है। वैदिक संस्कृति में ऊँच-नीच और अमीर-गरीब का कोई भेद नहीं। वैदिक संस्कृति तो कहती है कि 'खूब कमाओ। परंतु यह समझकर कि यह केवल मेरे लिए ही नहीं है। जितनी जरूरत हो उतना ही संग्रह करो। जरूरत से अधिक संग्रह करना पाप है। परमात्मा के दिए पदार्थों का मिलकर और बाँटकर प्रयोग करो।'

आर्यसमाज व्यक्ति और समाज के संबंधों को बहुत महत्व देता है। तभी तो स्वामी दयानंद जी ने आर्यसमाज के दस नियमों में से तीन नियम केवल इसी विषय पर रचे हैं। वैदिक संस्कृति का मानना है कि यह सारा संसार एक परिवार है। इसलिए हम सबको एक परिवार की भाँति आपस में मिलकर रहना चाहिए। हम दूसरों के साथ ऐसा ही व्यवहार चाहते हैं। इसलिए हमारे व्यवहार में हिंसा, छल-कपट और झूठ नहीं होना चाहिए। मनुष्य का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है कि वह दूसरों से प्रेम से बोले तथा प्रीति का व्यवहार करे। यह व्यवहार उसके धर्म और कर्त्तव्य के अनुसार भी हो। जैसे, राजा को प्रजा के साथ प्रेम से व्यवहार करना चाहिए, परंतु उसके लिए यह भी आवश्यक है कि अपने धर्म को

निभाते हुए वह दुष्टों को दंड भी दे । दंड भी दुष्टता के योग्य होना चाहिए। तभी तो स्वामी जी आर्यसमाज के सातवें नियम में लिखते हैं –

'सब से प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिए।'

इतिहास में भी हम देखते हैं कि पृथ्वीराज ने मोहम्मद गौरी को धर्मानुसार यथायोग्य दंड न देते हुए, उसे कई बार छोड़ दिया। उस व्यवहार के कारण देश को पराधीनता का परिणाम भुगतना पड़ा। दूसरी ओर श्रीरामचंद्र ने अपने धर्म और कर्त्तव्य को निभाते हुए और रावण के साथ यथायोग्य व्यवहार के कारण ही आज भी संसार श्री रामचंद्र की पूजा करता है। आज समाज में यह समझा जाता है कि दूसरों से व्यवहार का एक ही मापदंड है और वह है अपना लाभ अथवा ज्यादा पैसा। आज तो प्रायः यही कहा जाता है कि हमें दूसरों से क्या लेना-देना, बस अपना स्वार्थ साधो। लेकिन यह सोच ठीक नहीं है। पहले तो यह हमारी संस्कृति के विरुद्ध है और फिर मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसे समाज में सबसे मिलजुलकर रहना है। यदि संसार में चारों ओर दुःख और गरीबी हो और व्यक्ति केवल अपनी ही उन्नति की बात करे तो सुख और शांति कैसे आ सकते हैं ? इसलिए स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने आर्यसमाज के नौवें नियम में लिखा है कि स्वार्थ त्यागते हुए –

'प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट नहीं रहना चाहिए किंतु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।' इसलिए

हमारा संकल्प - ''हम आज से सबके साथ प्रेम पूर्ण व्यवहार करेंगे।

(क) **हम करेंगे** - हम सबसे पहले अपने स्कूल के सब छात्रों को अपना भाई समझेंगे। हम खेल में अपनी टीम में भाई-भाई की तरह मिलकर काम करेंगे। हम अपने पड़ोसियों के सुख-दुख में काम आयेंगे। हम आर्यवीर दल और आर्य वीरांगना दल के सदस्य बनकर समाज और देश की सेवा करेंगे। पूरी मानव जाति के हित में काम करेंगे।

(ख) **हम नहीं करेंगे** - छोटी-छोटी बात पर अपने साथियों की शिकायतें नहीं करेंगे। हम किसी निर्धन या अपाहिज को नहीं चिढ़ायेंगे, अपितु उन्हें भैया, दीदी आदि मधुर सम्बोधनों से बुलाएँगे। हम किसी के विरुद्ध गुट नहीं बनाएँगे। यदि किसी साथी से कोई भूल हो जाये तो हम बदला लेने का यत्न नहीं करेंगे और उसे क्षमा कर देंगे।

अतः किसी के हृदय पर विजय पाना हो तो दुःख में उसकी सच्चे दिल से सहायता करनी चाहिए, जैसे राम और सुग्रीव ने परस्पर सहायता की थी। दुःख में मानवता और पवित्रता एक साथ जागते हैं।

मित्रता करना सरल है, पर उसे निभाना कठिन है। मित्रता कैसे निभायें कि वह दिनोंदिन बढ़ती रहे – इसके लिए कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना चाहिए – (क) मित्र से अनुचित लाभ न उठाएँ। (ख) पीठ पीछे निन्दा न करें। (ग) लेन-देन साफ रखें। (घ) गन्दा मजाक न करें। (ङ) मित्र के लिए भार नहीं बन जाना चाहिए। (च) आपसी व्यवहार में कभी सीमा को लाँघकर 'अति' न करें।

मैत्री और भ्रातृभाव का उलटा है – झगड़ालू व्यवहार और संकुचित विचार। अपने को ऊँचा और दूसरों को नीचा समझना। अपने को ठीक किन्तु दूसरों को गलत कहना। छोटी-छोटी बातों को लेकर लड़ाई-झगड़ा खड़ा करना। बात-बात में दूसरों के दोष निकालना। सीधी-सरल बातों की अपेक्षा व्यंग्य और ताने कसना। मधुर भाषण को छोड़कर कैंची और तलवार की तरह जबान चलाना जिसका एक-एक शब्द सुनने वालों के हृदय में तीर की तरह चुभे। ये सब कटु व्यवहार हैं। ऐसे लोगों को कोई नहीं चाहता। भला कड़वा करेला बनने से क्या लाभ ? क्यों न हम मधुर मानव बनें जिसे जब चाहें और प्यार करें।

आर्यसमाज चाहता है कि व्यक्ति समाज के बंधनों में बँधा रहे जिन कार्यों का प्रभाव समाज पर पड़ता है, उनको करते समय हमें समाज की व्यवस्था के अनुकूल ही चलना चाहिए। इसीलिए सरकार कानून भी बनाती है। किंतु जिन कार्यों का समाज के साथ कोई संबंध नहीं हैं, उनको करने में हम स्वतंत्र हैं। आर्यसमाज के दसवें नियम में भी यह स्पष्ट लिख है कि – **'सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतंत्र रहें।'** जैसे - भ्रष्टाचार, दहेजप्रथा, जात-पात आदि कुरीतियाँ समाज को नष्ट कर नही हैं, सो इनमें सुधार के लिए हमें समाज के अनुशासन में चलना होगा। हाँ, व्यक्ति का खान-पान कैसा हो, दिनचर्या क्या हो, उसका स्वयं का व्यवसाय क्या हो इत्यादि निश्चय करने में व्यक्ति स्वतंत्र है।

6

हमारे पाँच शत्रु ! कैसे बनें मित्र!

शत्रुता और मित्रता ये दोनों सापेक्ष शब्द हैं। कोई व्यक्ति, कोई मनोभाव अथवा किसी प्रकार का विचार स्वभाव से शत्रु अथवा मित्र नहीं होता। हमारा व्यवहार और आचरण ही इन्हें शत्रुता या मित्रता की कोटि प्रदान किया करता है।

काम, क्रोध, मोह, लोभ और अहंकार ये पाँच मनुष्य के परम शत्रु बताए गए हैं; किंतु स्वाभावतः ये शत्रु नहीं है। जब तक व्यक्ति इन्हें अपने वश में रखता है तब तक ये सेवक के समान उसके जीवन तक को सुखमय बनाने का प्रयत्न करते हैं, किंतु जब व्यक्ति इनके वश में हो जाता है, इनका सेवक बन जाता है, अपनी गतिविधियों को इनके आधीन कर देता है तो ये शत्रु बन जाते हैं, और वह भी भयंकर शत्रु हो जाते हैं ।

यदि काम भावना न हो तो संतान परंपरा टूट जाए और सृष्टिक्रम रुक जाए। क्रोध न रहे तो हर कोई हमारा अपमान करने तथा तरह-तरह से हमें सताने का प्रयत्न करने लगे। मोह के अभाव में-दुध मुँहे बच्चों के पालन-पोषण का तथा बड़े बच्चों की पढ़ाई-लिखाई आदि का कोई ध्यान ही न रखे। लोभ के बिना कार्यों में तत्परता समाप्त हो जाए और अहंकार के बिना

वह शत्रु भी बन सकता है, जब आप उसके स्वार्थ में अधिक बाधक बनेंगे। मित्र बनाते समय तुलसीदास जी की सलाह है :

''मन मलीन तन सुन्दर कैसे ?
विषरस कनक घट जैसे।''

अर्थात् मित्र बनाते समय शरीर की सुन्दरता मत देखो। मन की निर्मलता को महत्त्व दो।

मित्रता की तीन स्थितियाँ हैं – 1. पहले परिचय; 2. पुनः गुण-कर्म-स्वभाव की समानता; 3. अंत में मित्रता।

मित्र का गुण-कर्म-स्वभाव कैसा हो ? कसौटी प्रस्तुत हैः

जो सुख-दुख में एक-सा व्यवहार करे। जो भले कार्य की प्रेरणा दे। जो बुराई से रोके। जो गुप्त बातें किसी को न कहे। गुणों की प्रशंसा सबके सामने करे। जो लेन-देन में खरा हो। जो खाता भी है और खिलाता भी है। जिसकी आयु आपकी आयु के समान हो। एक-सी स्थिति और एक -से विचारों वाले लोगों में घनिष्ठता अधिक होती है। मित्रता की सबसे बड़ी कसौटी विपत्ति है :

'' आपत काल परखिये चारी
धीरज, धर्म, मित्र, अरु नारी।''

19

महान् गुण : भ्रातृभाव

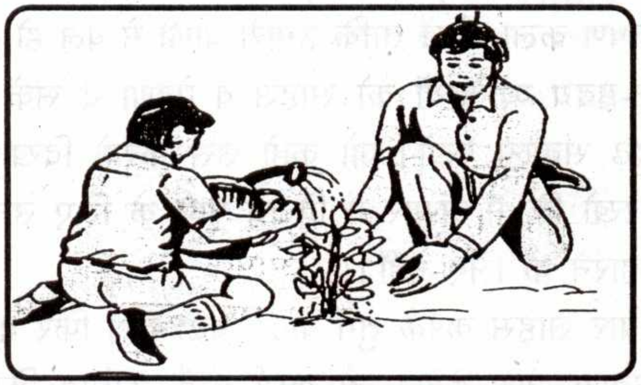

एक नहीं अनेक मित्र बनाइये। एक से नहीं, अधिक से प्रेम-व्यवहार कीजिए। एक स्थान पर नहीं, प्रत्येक स्थान पर भ्रातृभाव फैलाइये। आपका भाईचारा केवल आपके घर तक सीमित न रहे अपितु सारा संसार आपका घर बन जाये। सारे मानव आपके भाई कहलायें। यह ऊँचा आदर्श है। यदि सभी नहीं तो अधिक मनुष्यों को अपना बंधु बनाइये।

तो क्या राह चलते को आप मित्र बना लेंगे ? न-न, ऐसी भूल न कीजिएगा। सहसा न तो किसी को मित्र बनाना चाहिए और न किसी का मित्र बनना चाहिए। यदि कोई आज स्वार्थवश मित्र बनता है तो वह झूठा मित्र है। कल

आत्मविश्वास का मूलाच्छेद हो जाए। अतः परमात्मा ने इन भावों की सृष्टि अकारण नहीं की है। परंतु इनसे परेशानी तब होती है, जब व्यक्ति इन सेवकों को अपना स्वामी बना बैठता है। फिर काम भावना शरीर को खाने लगती है। क्रोधी क्रोध के आवेश में अपने ही सामान को तोड़ने लगता है। लोभी अपने स्वत्व को भी भोग नहीं पाता, महाकंजूस हो जाता है। मोह में पड़कर दशरथ के समान जान दे डालता है और रावण अहंकार में आकर दूसरे द्वारा दी गईं भली सलाह को मानने में भी अपनी बेइज्जती समझता है।

इन पाँचों शत्रुओं में **'काम'** का पहला नंबर है। 'काम' सब फसादों की जड़ है। अपने शरीर की शक्ति को जीर्ण-शीर्ण कर देना काम का काम कहलाता है। काम का अर्थ है – किसी भी सुंदर स्त्री या पुरुष को इस दृष्टि से देखना कि हमारे अंदर व्यर्थ में ही उत्तेजना उत्पन्न हो जाए। अतः काम को वश में करना चाहिए। काम को वश में करने का उपाय है – अपने विचारों का संयम। हमें अपने मन में सदैव अच्छे विचारों का चिंतन करना चाहिए। सदा उत्तमोत्तम ग्रंथों का पठन-पाठन करना चाहिए। असभ्य और चरित्रहीन तसवीरों को देखने से बचना चाहिए। अश्लील गीतों को नहीं सुनना चाहिए। पुरुष को स्त्रियों में और स्त्री को पुरुषों में अधिक देर तक नहीं रहना चाहिए। प्रातःकाल उठकर भ्रमण और शौचादि से निवृत्त होकर प्रभु का चिंतन करना चाहिए। आहार-विहार, स्वच्छ तथा नियमबद्ध होना चाहिए। मदिरा, मांस, मिर्च-मसाले आदि के सेवन से बचना चाहिए। ये वस्तुएँ हृदय में एक प्रकार की ऐसी भाप उत्पन्न करती हैं, जिसे वश में

करना मानव के वश में नहीं। यह भाप काबू से बाहर होकर बाहर निकलने को भागती है और अपने साथ-साथ उस धातु को भी निकाल फेंकती है, जो शरीर में रहने वाला सबसे अमूल्य तत्त्व है। अतः काम को वश में रखने के लिए सात्त्विक आहार, अच्छे ग्रंथों का स्वाध्याय तथा प्रभु-भजन अपेक्षित है।

दूसरा शत्रु **क्रोध** है। यह शरीर का एक विकृत रूप है। हमें यह समझना चाहिए कि जब मनुष्य क्रोध में आता है तो बाहर से तो उस समय उसके शरीर में कोई वस्तु आ नहीं जाती, अतः जो कुछ विकार होता है वह शरीर के भीतर ही होता है। जब किसी मनुष्य को क्रोध आता है तो उसके रुधिर में विषैले कीटाणु भर जाते हैं, जो मनुष्य को दुर्बल बना देते हैं। मनुष्य के अंदर क्रोध का होना स्वाभाविक होने पर भी यह उसकी कमजोरी है। कमजोर व्यक्ति जल्दी क्रोध में आता है। क्रोध को वश में करने का सरल उपाय यह है कि हमें अपने अदंर सहनशीलता पैदा करनी चाहिए। जिस समय हमें क्रोध आए, उस समय हमें अपने आपको वश में कर उस घटना स्थल से तत्काल कहीं इधर-उधर हो जाना चाहिए। क्रोधित व्यक्ति तत्क्षण कोई ऐसा कार्य कर देता है, जिसके लिए उसे पछताना पड़ता है। यदि वह कुछ देर तक चुप रहे और अपना ध्यान किसी दूसरे विषय पर केंद्रित कर ले तो वह अपने क्रोध पर विजय पा लेता है। महात्मा गांधी कहा करते थे कि गुस्सा एक प्रकार का क्षणिक पागलपन है।

हमारा तीसरा शत्रु है **लोभ।** संसार में किसी वस्तु को करने की इच्छा रखना लोभ नहीं कहलाता, क्योंकि संसार की सभी

समाज सेवा के लिए स्वयंसेवक बनें। आयवीर और आर्य वीरांगना दल के सदस्य बनें। एन.सी.सी. में बढ़-चढ़कर भाग लें। पेड़ पर चढ़ने उतरने का अभ्यास करें। पहाड़ों पर पैदल यात्रा व ट्रैकिंग करें। घर में या विद्यालय में बाग-बगीचे व खेती का काम करें।

6. भाषण कला सीखें ताकि हमारी वाणी में बल हो और हम दुर्बल-हृदय व्यक्तियों को साहस व प्रेरणा दे सकें।

7. दृढ़ संकल्प रखो। जो कहो उसे करके दिखाओ। विश्वास रखो कि मैं संसार में विजय पाने के लिए उत्पन्न हुआ हूँ, हारने के लिए नहीं।

एक बार साहस करके तुम कदम बढ़ा दो। फिर देखो, ईश्वर तुम्हारा साथ देगा। जो कार्य तुम्हें असंभव दिखाई देते थे उन्हें तुम चुटकियों में पूर्ण कर लोगे।

असीम आनन्द है। जिसे सामान्य लोग मृत्यु कहते हैं वीर उसे गले लगाकर मिलते हैं। ठीक रास्ते पर चलते हुए विपत्तियों, बाधाओं और दुःखों का सामना करना और उन पर विजय पाने के लिए आगे बढ़ना ही सच्चा साहस है।

साहस मन का गुण है। क्या तुमने देखा नहीं कि मई, 1969 में हल्के-फुल्के मास्टर चदंगीराम ने भारी-भरकम पहलवान मेहरदीन को चुटकियों में हरा दिया। इस प्रकार जिसके मन में साहस की शक्ति है वह बड़े-बड़े बलवानों को चित कर देता है। अतः हमें अपने में साहस का विकास करना चाहिए। इसके निम्नलिखित उपाय हैं :

1. वीरों, महान् यात्रियों, सत्यवादियों, शहीदों, क्रान्तिकारियों और प्रकृति के शिखर-सागर आदि पर विजयी होने वाले सहासियों के जीवन-चरित्र पढ़ने चाहिए।

2. खेल-कूद, तैराकी, घुड़सवारी, कुश्ती आदि साहसिक क्रिड़ाओं का अभ्यास करें।

3. सादा और कठोर जीवन बिताने का अभ्यास करें। विलास की वस्तुएँ और आरामदायक साधन प्रयोग में न लाएँ।

4. समाज-सेवा, दरिद्रों की सहायता, रोगियों के लिए दान और दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों की मदद के लिए सर्वदा तैयार रहें। अपने स्वास्थ्य को सुधारें और बलवान बनें।

5. तैरना सीखें। आग बुझाने का प्रशिक्षण प्राप्त करें।

वस्तुएँ मनुष्य के प्राप्त करने के लिए ही बनी हैं। हमें संसार में रहते हुए उन्नति करनी चाहिए। परंतु किसी दूसरे की अवनति करके अपनी उन्नति का विचार भी नहीं करना चाहिए। बिना परिश्रम के धन बटोरना या अनुचित उपायों से अपनी अनावश्यक इच्छाओं को पूरा करने के लिए दूसरों का अधिकार छीनना लोभ कहलाता है। ऐसे लोभ को रोकना चाहिए। इससे हमारी शक्ति का नाश होता है। चोरी और जारी के मूल में लोभ-भावना ही रहती है। इसलिए लोभ को पाप का मूल बताया गया है। लोभ हमारा तीसरा महान शत्रु है। इस शत्रु से बचने के लिए वेद ने 'त्येक्तेन भुज्जीथाः' त्याग-भावना से भोगने का उपदेश दिया है। यदि व्यक्ति अपनी संपत्ति को राष्ट्र की संपत्ति, राष्ट्र की अमानत मानकर तब उसका उपयोग करे तो उसके अंदर लोभ की मात्रा अवश्य कम हो जाए।

मोह को मारने का उपाय लोभ को मारने के समान ही है। लोभ से ही मोह पैदा होता है। मोह का अर्थ है – किसी वस्तु के साथ अधिक संलग्नता। किसी प्यारी वस्तु के विनाश या प्रियजन की मृत्यु के पश्चात् जो दुःख होता है, वह दुःख मोह के कारण ही होता है, और यह है भी स्वाभाविक। जब दो व्यक्ति साथ-साथ रहते हैं तो उनमें परस्पर मोह पैदा होना स्वाभाविक है। मोह तभी पैदा होता है, जब हम किसी वस्तु में ममत्व भावना रखते हैं। जब हम संसार में ईश्वरार्पण बुद्धि से ही रहेंगे तो हमें मोह नहीं हो सकता। प्रत्येक वस्तु का भोग करते हुए 'इदन्न मम' का पाठ पढ़ेंगे तो निस्संदेह उस वस्तु के हमसे पृथक् हो जाने पर हमें दुःख

न हागा।

यह ठीक है कि जब तक किसी वस्तु में ममत्व पैदा न किया जाए तब तक, उस वस्तु के साथ हमारी पूरी संलग्नता नहीं होती, परंतु हमें यह भी न भूल जाना चाहिए कि प्रत्येक वस्तु का एक न एक दिन त्याग करना ही पड़ता हे। इसी आशय को स्पष्ट करते हुए गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश करते हुए योगीजनों को 'पद्मपत्रमिवाम्भासा' अर्थात् संसार-सागर में कमल के समान रहने का आदेश दिया हैं

अहंकार मानव का पांचवाँ शत्रु है। जब हमारे भीतर से ममत्व निकल आएगा, हमारे अंदर सच्चे कर्मयोग की भावना उठेगी। हम समझेंगे कि हम तो किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा निर्देशित होकर चलायमान होते हुए ही यह सब कुछ कर रहे हैं। मैं केवल कर्म करने में स्वतंत्र हूँ, फल ईश्वराधीन है। मेरी यह स्वतंत्रता भी प्रारब्धकर्मों ने बहुत कुछ सीमित कर दी है। मेरी प्रवृत्ति और निवृत्ति में ये प्रारब्ध कर्म कहीं साधक बन जाते हैं और कहीं बाधक। अतः मैं किसी कर्म या उसके फल पर क्यों अभिमान करूँ? अहंकार होता है किसी शाश्वत वस्तु का। पर यह मनुष्य शरीर तो क्षणभंगुर है। फिर भला अभिमान किसका ?

इस प्रकार के चिंतन से इन पाँचों शत्रुओं पर विजय पाई जा सकती है और इन्हें अपना दास बनाया जा सकता है।

की लहरों को चीरते हुए पाक जलडमरूमध्य को तैरते हुए पार किया – यह दूसरा साहस है। आशाराम त्यागी पाकिस्तानी तोपों के बरसते गोलों की परवाह न करके शत्रु सेना पर टूट पड़ा और उसने प्राणों की बाजी लगाकर शत्रु सेना को बढ़ने से रोक दिया – यह तीसरे प्रकार का साहस है। हकीकत राय और गुरु गोविन्दसिंह के पुत्रों ने मरना स्वीकार किया किन्तु अपना धर्म नहीं छोड़ा – यह चौथा साहस है। प्रहलाद ने अपने सिर पर मँडराती हुई मृत्यु की परवाह न करके भी ईश्वर की जय बोली – यह पाँचवाँ साहस है। इस प्रकार साहस के अनेक रूप हैं।

एक बालक डूब रहा था। 'क' ने गहरे पानी में छलाँग लगा दी और बालक को बचा लिया। क्या यह छोटा साहस है ? घर से आग की लपटें उठ रही हैं। 'ख' अपने प्राणों की चिंता न करके ज्वालाओं में घुस जाता है और आग में घिरे वृद्ध को बचा लाता है। अद्वितीय साहस है यह भी। इस प्रकार साहसपूर्ण घटनाएँ हम समाचार-पत्रों और पुस्तकों में अक्सर पढ़ते हैं।

क्या आपने कभी सोचा कि दमकल वाले जलती आग से लोगों को क्यों बचाते हैं ? साहसी युवक कुएँ, तालाब और समुद्र में कूदकर अपने प्राणों को दूसरों के लिए संकट में क्यों डाल देते हैं ? क्या उन्हें मृत्यु से डर नहीं लगता ?

विद्यार्थियो ! जिसे हम खतरा कहते हैं बहादुरों के लिए वह खेल है। जिसे दूसरे डर कहते हैं बहादुरों के लिए वह

18

महान् गुण : साहस

"विपत्ति से बढ़कर अनुभव सिखाने वाला कोई विद्यालय आज तक नहीं खुला' — मुंशी प्रेमचन्द

तेनजिंग बर्फानी चट्टानों और तूफानी अंधड़ों में भी हिमालय पर चढ़ते हुए संसार के सर्वोच्च शिखर एवरेस्ट पर सबसे पहले पहुँचा, यह साहस है। मिहिर सेन ने समुद्र

7

भारतीय दर्शन

भारतीय दर्शन को मुख्यतया दो भागों में बांटा जाता है –

1. आस्तिक दर्शन

2. नास्तिक दर्शन

जो परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करता है, सामान्यतः उसे नास्तिक कहते हैं। जो परमात्मा की सत्ता पर विश्वास करता है उसे आस्तिक कहने लगते हैं। नास्तिक दर्शन में मुख्य रूप से तीन धाराएं रखी जाती हैं –

1. चार्वाक दर्शन । 2.जैन दर्शन । 3. बौद्ध दर्शन ।

ये तीनों ही वेद को प्रमाण नहीं मानते और यज्ञ-योग में विश्वास नहीं करते। इसी कारण नास्तिक कोटि में आते हैं। चार्वाक दर्शन के पहले आचार्य बृहस्पति थे। इनकी दृष्टि मात्र भोगवादी रही है। खाओ, पीओ, मौज करो, पुनर्जन्म किसने देखा है ? इस दर्शन में कोई ठोस आधार न होने के कारण कुछ लम्बे समय के बाद ही प्रभाव कम हो गया। जैन दर्शन का इतिहास लम्बा है। इनके संचालकों को 'तीर्थंकर'' नाम दिया जाता है। बौद्ध धर्म का संचालक गौतम बुद्ध को माना जाता है।

आस्तिक दर्शनों की संख्या छः मानी जाती है –

1. न्याय दर्शन - इसके रचयिता गौतम ऋषि हैं। **2. वैशेषिक दर्शन** - इसके रचयिता कणाद ऋषि है। **3. साँख्य दर्शन** - इसके प्रणेता कपिल ऋषि हैं। **4. योग दर्शन** - इसके बनाने वाले पंतजलि है **5.मीमांसा दर्शन** - के प्रणेता जैमिनी ऋषि हैं। **6. वेदान्त दर्शन** - वादरायण ऋषि द्वारा लिखा गया है। इन्हीं को षड्दर्शन कहते हैं। इनमें ईश्वर, जीव, प्रकृति और सृष्टि सम्बन्धी विस्तार से विचार किया गया है। दर्शन शब्द का अर्थ है – जिससे देखा जाय या जो देखने में सहायता करे, अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि किसको देखा जाय ? उत्तर स्पष्ट है कि अपने को और परमात्मा को देखा जाय। अर्थात् अपने को जानकर ही परमात्मा को जाना जा सकता है। अपने को जानने का अर्थ है, मैं कौन हूं ? मैं शरीर से पृथक आत्मा हूं। मै आत्मा –– जन्म-मरण से अलग हूं। शरीर के परिवर्तन का नाम ही जन्म और मृत्यु है। वास्तव में आत्मा तो अजर, अमर और शुद्ध–बुद्ध है। यही दर्शनों का उद्देश्य हे।

दर्शन हमें दुःखों से मुक्त रहने की प्रेरणा देते हैं। संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं।

1. आध्यात्मिक - आत्मा और देह से सम्बन्ध रखने वाला – शरीर तथा मन से उत्पन्न होने वाले दुःख मानव को सदा लगे ही रहते **शरीरं व्याधि मन्दिरम्** –शरीर तो बीमारियों का घर कहलाता है। अन्दर ही अन्दर शरीर में अनेक रोग पलते रहते हैं। मन से उत्पन्न होने वाले दुख भी मानव को लगे ही रहते हैं जैसे – भय, चिंता, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि। इनसे मनुष्य घिरा हुआ है। आज का मानव तो इन दोनों प्रकार के रोगों से घिरा हुआ है।

2. आधिभौतिक - ये दुःख बाहर के पदार्थों से उत्पन्न होने

स्वयं सो जाता है, उसका भाग्य भी सोता रहता है। जो उठकर चल देता है उसका भाग्य भी सक्रिय हो जाता है। अतः "हे मानव ! चलते रहो, चलते रहो।"

तुम भी जीवन का एक ऊँचा लक्ष्य बनाओ। फिर अपने शरीर और मन की सारी शक्ति उसकी प्राप्ति में लगा दो। मार्ग में अनेक बाधाएँ आएँगी। तुम्हें उन पर विजय प्राप्त करके आगे बढ़ते जाना होगा। यदि हम भय या लोभ के कारण ढीले पड़ गये तो लक्ष्य हमसे दूर भाग जायेंगे।

श्रम करते समय कई त्रुटियाँ भी होना स्वाभविक है। इनसे निराश नहीं होना चाहिए। वस्तुतः भूल किए बिना कोई व्यक्ति सफल और महान् नहीं बन सकता।

श्रम केवल व्यक्ति का गुण नहीं है। वह सामूहिक वरदान भी है। देश की उन्नति का मूल मंत्र भी श्रम है। हाँ, राष्ट्र और समाज के विकास के लिए एक व्यक्ति का नहीं, अनेक व्यक्तियों का श्रम चाहिए। एक दिन का श्रम नहीं, वर्षों का श्रम चाहिए। बिखरा हुआ प्रयत्न नहीं, योजनाबद्ध प्रगति चाहिए। इस प्रकार हमें तब तक श्रम करते रहना चाहिए जब तक हम उन्नति के शिखर पर नहीं पहुँच जाते।

आँतों को श्रम करना पड़ता है। इस प्रकार सारी दुनिया दिन-रात श्रम कर रही है। अन्तर केवल इतना है कि कुछ लोग स्वयं श्रम करते हैं और श्रम में अपना गौरव समझते हैं। वे ही सच्चे परिश्रमी हैं। जो डंडे के डर से काम करते हैं, जो दूसरों के कहने पर चलते हैं, नहीं तो बैठे रहते हैं, उन्हें परिश्रमी कहना श्रम के नाम पर बट्टा लगाना है।

श्रम का पर्यायवाची शब्द 'उद्योग' है – अर्थात् उत्साह से काम में जुट जाना। बस, इतना ही मनुष्य का कर्तव्य है। हम अपना पूरा बल लगाकर कार्य करें। काम पूर्ण हो जाए तो रुकें नहीं, दूसरा कार्य आरंभ कर दें। पूर्णतया सफलता न मिले तो निराश न हों।

एक बार यदि सफल न होंगे तो पुनः करो उद्योग। तब तक उद्योग करते रहो, जब तक कार्य पूर्ण न हो। यह सत्य है कि फल मिलने तक परिश्रमी को प्रसन्नता होती है। किन्तु केवल फल के लिए श्रम नहीं करना चाहिए। यदि ऐसा हो तो मनुष्य श्रम करना ही छोड़ देंगे। जैसे कोई छात्र कहे, पुरस्कार मिलेगा तो पढूंगा, नहीं तो नहीं पढ़ूँगा। भला ऐसा लड़का परिश्रम से पढ़ेगा ? कभी नहीं। अतः श्रम केवल श्रम के लिए करना चाहिए। श्रम का पुरस्कार स्वयं श्रम है।

वेद में एक प्रकरण है 'चरैवेति'। उसमें लिखा है –"जो मनुष्य बैठा रहता है उसका भाग्य भी बैठा रहता है, जो उठ खड़ा होता है उसका भाग्य भी खड़ा हो जाता है । जो

वाला कहलाता है। जेसे – सांप, बिच्छु, शेर और जंगली पशुओं के आक्रमण से उत्पन्न होने वाला कष्ट अधिभौतिक दुःख कहलाता है।

3. आधिदैविक - इस दुःख के अन्तर्गत वे दुःख आते हैं जिन पर मानव का कोई वश नहीं होता है, जैसे – कभी बहुत अधिक वर्षा का होना, कभी सूखा पड़ जाना, कभी दैवीय प्रकोप में भयंकर महाबीमारी का फैल जाना। कभी भूकम्प या सुनामी का आ जाना।

इन तीन प्रकार के दुःखों से छूटना ही जीवात्मा का परम लक्ष्य है। इसी को सबसे बड़ा पुरुषार्थ कहा जाता है। जन्म–मरण और दुःखों से छूटना ही मोक्ष कहलाता है।

इन भारतीय दर्शनों में इन्हीं बन्धनों से छूटने के उपाय बताए गए हैं। किस प्रकार मनुष्य अनादि काल से दुःखों में फंसकर कष्ट उठा रहा है। इससे तभी छुटकारा पा सकता है, जब वह अपने जीवन में यम, नियम, धारणा, ध्यान आदि का आचरण करेगा। इन सभी दर्शनों का मूल भी एक ही है और अन्तिम लक्ष्य भी एक ही है। चाहे ऊपर से इनमें विरोध दिखाई देता हो, वस्तुतः विरोध है नहीं, क्योंकि सभी का लक्ष्य एक ही है, परम तत्व की प्राप्ति करना ।

भारतीय साहित्य में दर्शनों का महत्वपूर्ण स्थान है।

–डॉ. महेश वेदालंकार

8

आर्य पर्व

पर्वों तथा उत्सवों का आयोजन जातीय संस्कृति की रक्षा करने के लिए किया जाता है। जाति में नव-चेतना, नव जीवन तथा नव स्फूर्ति का संचार करने के लिए उत्सवों का आयोजन किया जाता है। पूर्वजों का स्मरण करने से हमारे अन्दर बल, पराक्रम, देशभक्ति, सदाचार, परोपकार आदि की भावनाएं जाग्रत होती हैं। हम गुणवान बनते हैं। पूर्वजों के जीवन से हमें शिक्षा मिलती है। उनके जीवन दर्शन से प्रेरित होकर हम भी महान् कार्यों की ओर प्रवृत्त होते हैं। भारत एक प्राचीन देश है। उसकी सभ्यता और संस्कृति भी उतनी ही प्राचीन है।

त्योहार अथवा उत्सव दो प्रकार के होते हैं। कुछ पर्वों का सम्बन्ध महापुरुषों के जीवन से होता है। इन अवसरों पर महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित उन घटनाओं का स्मरण किया जाता है जिनसे हमें प्रेरणा और शक्ति मिलती है। अन्य पर्वों का सम्बन्ध ऋतु के साथ होता है। हमें आर्य पर्वों में उत्साहपूर्वक भाग लेना चाहिए।

कुछ प्रमुख पर्वों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

आर्यसमाज स्थापना दिवस

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संसार का उपकार करने के लिए चैत्र शुक्ला प्रतिपदा संवत् 1932 विक्रमी के दिन सर्वप्रथम मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। यह दिन भारत में नव वर्ष के दिन के रूप में मनाया जाता है। इस दिन विशेष यज्ञ तथा

होता है। फिर वह काम करने में जुट जाता है। यदि मन में ही उमंग न हो तो हाथ भी नहीं हिलते। पाँव भी नहीं उठते। अंग-प्रत्यंग ढीला पड़ जाता है। अतः मन में श्रम के लिए उत्साह होना पहली शर्त है। दूसरी शर्त है शरीर में सामर्थ्य। जब मन का साहस और शरीर का सामर्थ्य – ये दोनों मिल जाते हैं तब श्रम का अवतार होता है।

श्रम का लक्ष्य है – निर्माण। जिस घर में हम रहते हैं वह मजदूरों और शिल्पियों के श्रम का परिणाम है। ये बड़े-बड़े कारखाने श्रमिकों की मेहनत से बने हैं। राष्ट्रपति भवन और बड़े-बड़े मंत्रालयों की एक-एक ईंट पर श्रम की कहानी अंकित है। भाखड़ा नाँगल और राणा प्रताप बांध बनाने में लाखों का लहू-पसीना एक होकर बहा। अनाज का दाना-दाना किसान के कठोर परिश्रम की गवाही दे रहा है। ठंडे, मीठे और रसीले फल माली की मेहनत के प्रमाण हैं। तुम्हारे पाँवों तले की सड़कों पर किसी ने दिन-रात कुदाल चलाये, रोड़ी कुटी, इंजन दौड़ाए और बूँद-बूँद तारकोल छिड़की, तभी वह हमारे चलने योग्य बनी। बिजली के खंभे, बस्तियों के पार्क, मोटर के पुर्जे, पुस्तकों के पन्ने, दवात की स्याही और लेखनी की नोक – सबके निर्माण की एक ही भूमिका है – श्रम।

निस्संदेह ! श्रम के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता। थाली में परोसी हुई रोटी भी श्रम के बिना मुख में नहीं जा सकती, फिर उसे चबाना भी तो श्रम है। उसे पचाने में भी

17

महान् गुण : श्रम

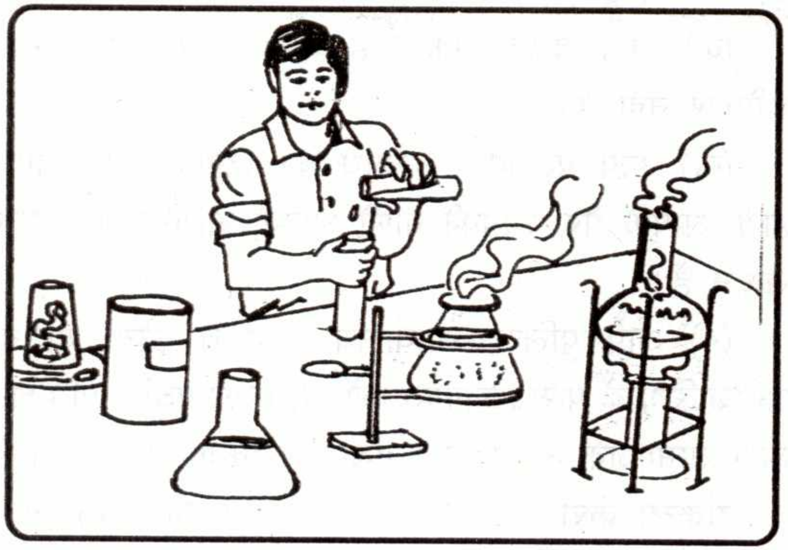

वह श्रम क्या जो तुम्हें थका दे ?

श्रम वह है कि हाथ-पैर थक जाएँ, पर मन न थके। आदमी थकने-हारने के लिए नहीं बना। वह मेहनत करने के लिए उत्पन्न हुआ है-आखिरी साँस तक काम, मेहनत, परिश्रम।

श्रम का अर्थ केवल शारीरिक परिश्रम ही नहीं, मानसिक श्रम भी होता है। वस्तुतः श्रम का उदय पहले मन में होता है, फिर हाथ-पाँव में स्फूर्ति आती है। फिर अंग-अंग गतिशील

सामूहिक सभाएं आयोजित करनी चाहिए।

रामनवमी :

चैत्र शुक्ला नवमी को मर्यादा पुरुषोत्त्म श्रीराम का जन्म हुआ था। राम ने अधर्म का नाश तथा धर्म की विजय की थी। इस दिन यज्ञादि के पश्चात् महापुरुष श्रीराम के जीवन की प्रेरक घटनाएं उपस्थित लोगों को सुनानी चाहिए।

हरि तृतीया :

यह वर्षा का उत्सव है। इसे हरियाली तीज भी कहा जाता है। यह हर्ष और उल्लास का उत्सव है। इस दिन वन-विहार, खेल-कूद तथा झूला आदि का आयोजन किया जाता है।

श्रावणी उपाकर्म :

श्रावण की पूर्णमासी को यह त्योहार मनाया जाता है। इस दिन यज्ञोपवीत बदलकर वेद के अध्ययन का व्रत लेना चाहिए।

जन्माष्टमी :

योगीराज श्रीकृष्ण का जन्म भाद्रपद कृष्ण पक्ष की अष्टमी को हुआ था। श्रीकृष्ण ने धर्म और नीति के अनुसर पाप का नाश किया और सज्जनों की रक्षा की। इस दिन वृहद् यज्ञ आदि का आयोजन किया जाता है और आर्यसमाज मन्दिरों तथा सार्वजनिक स्थानों पर महोत्सवों में श्रीकृष्ण चरित्र का गुणगान किया जाता है।

विजयदशमी :

अश्विनी शुक्ला दशमी को मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने रावण आदि राक्षसों को मारकर लंका पर विजय प्राप्त की थी। हमें इस दिन यज्ञ तथा सार्वजनिक सभाएं आयोजित करके प्रण करना चाहिए कि राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के विरुद्ध कार्य करने वाले आतंकवादियों को समूल नष्ट करके देश की स्वतन्त्रता की

रक्षा करें। इस दिन श्रीराम के जीवन पर व्याख्यान आयोजित करने चाहिए ।

दीपावली और महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस :

कार्तिक अमावस्या को श्रीरामचन्द्र लंका से अयोध्या वापस आये थे। प्रजा ने दीपमालाओं द्वारा अयोध्या को सजाकर श्रीराम का स्वागत किया तथा अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी। संवत् 1949 विक्रमी के इसी दिन शाम को 6 बजे आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द जी ने अजमेर में अपने प्राण छोड़े थे। महर्षि दयानन्द के उपकारों का स्मरण करने के लिए तथा उनके बताये हुए मानव कल्याण के मार्ग पर बढ़ते रहने का संकल्प लेने के लिए तथा उनके बताये हुए मानव कल्याण के मार्ग पर बढ़ते रहने का संकल्प लेने के लिए हमें प्रति वर्ष यह पर्व सोल्लास मनाना चाहिए। दिल्ली के रामलीला मैदान में आर्य केन्द्रीय सभा प्रतिवर्ष महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस का आयोजन करती है।

बसन्त पंचमी

बसन्त ऋतु के आगमन के समय माघ शुक्ला पंचमी को यह उत्सव खेल-कूद के साथ मनाना चाहिए। धर्मवीर हकीकत राय के जीवन और कर्तृव्य से प्रेरणा लेने के लिए गोष्ठियां आयोजित की जानी चाहिए ।

सीताष्टमी

फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को पतिव्रता माता सीता का स्मरण किया जाता है। नारी जीवन को सुखमय और कत्तव्यपूर्ण बनाने की प्रेरणा सीता के जीवन से ग्रहण करनी चाहिए । दिल्ली में आर्य प्रांतीय महिला सभा इस उत्सव का धूमधाम से आयोजन करती है।

लाना भी न्याय है। शत्रुओं की हत्या भी न्याय है। ऐसी स्थिति में खून करना भी न्याय है।

7. अन्याय करना और अन्याय सहना दोनों अनुचित हैं। अन्याय का सामना करने के लिए आप निम्नलिखित कदम उठा सकते हैं :

(क) आप दृढ़तापूर्वक कह दें कि हमें यह अन्याय स्वीकार नहीं है।

(ख) आप बलपूर्वक अन्याय का विरोध करें। आपके हाथ, आपके पैर, आपकी वाणी आपके साथी-सबंधी इसके साधन हैं।

(ग) आप पुलिस, न्यायालय, पंचायत, सेना या बड़े अधिकारियों के पास शिकायत करें। समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं द्वारा सामाजिक अन्याय का भंडाफोड़ किया जा सकता है।

संकल्प करो – "आज से हम न्याय को अपनाएँगे।"

(क) **हम करेंगे** – हम व्यवहार में सत्य का प्रयोग करेंगे। हम कक्षा में 'जनता की अदालत' का अभिनय करेंगे। हम विद्यालय में 'छात्रों के पंचायत घर' की स्थापना व संचालन करेंगे। हम विद्यालय में 'छात्रों की संसद' और 'अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय' के कार्यक्रम आयोजित करेंगे।

(ख) **हम नहीं करेंगे** – अन्याय। पक्षपात। अन्याय का सहना।

सकता हो और तुम्हें शीघ्र स्वयं न्याय-अन्याय का निर्णय करना हो तो निम्नलिखित मापदण्ड याद रखो।

1. स्वार्थ, लोभ, छल और पक्षपात के बिना जो बात भलाई के लिए की जाती है वह न्याय है। इसके विपरीत जो काम स्वार्थ, लालच, धोखा, पक्षपात के साथ बुराई के लिए किया जाता है, वह अन्याय है।

2. तुम शान्तचित्त होकर अपने अंतःकरण या दिल से पूछो – अब मुझे क्या करना चाहिए, जिसमें कोई बुराई न हो। तो अन्दर की आवाज़ बिलकुल सच्ची होगी।

3. स्मरण करो कि जैसी स्थिति में तुम हो वैसी स्थिति में अच्छे लोग क्या करते हैं? तुम भी कुछ-कुछ वैसा ही करो।

4. यदि फिर भी तुम्हें कुछ समझ में न आये तो यत्न करो कि थोड़ी देर के लिए बात टल जाये और तुम्हें दूसरे समझदार से सलाह लेने का अवसर मिल जाये।

5. यदि काम टालने का अवसर न हो तो अपनी भावना को पवित्र रखकर जैसा सूझे, वैसा तुरन्त कर डालो।

6. न्याय में भावना का बड़ा महत्व है। यदि भावना पवित्र हो तो कभी-कभी झूठ बोला भी न्याय बन जाता है। जैसे यदि कोई विदेशी घुसपैठिया तुमसे पूछे – तुम्हारा शस्त्र भंडार कहाँ है? तब सच बोलना अन्याय है और असत्य बोलना न्याय है। इसी प्रकार यदि तुम सैनिक हो तो शत्रु के किले में घुसकर उनके गुप्त पत्र और नक्शे चुरा

ऋषि बोधोत्सव :

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को शिवरात्रि के अवसर पर टंकारा के शिव मन्दिर में बालक मूल शंकर ने उपवास रखकर रात्रि जागरण किया। शिवमूर्ति पर चूहों को चढ़ावा खाते देखकर बालक मूलशंकर के हृदय में सच्चे शिव को जानने की इच्छा प्रबल हुई। इसी घटना से महर्षि दयानंद सरस्वती को सच्चा बोध प्राप्त हुआ था। हमें यह पर्व धूमधाम से मनाना चाहिए। दिल्ली के रामलीला मैदान में यह उत्सव ऋषि मेला के रूप में आर्य केन्द्रीय सभा धूमधाम से मनाती है जिसमें लगभग सभी आर्यसमाजें व शिक्षण संस्थाएं बढ़चढ़ कर भाग लेती हैं। यह पर्व महर्षि दयानंद के जन्म स्थान टंकारा में भी टंकारा ट्रस्ट द्वारा बड़े स्तर पर मनाया जाता है जिसमें देश भर से हजारों लोग सम्मिलित होते हैं।

लेखराम वीर तृतीया :

फाल्गुन शुक्ला 3, संवत्, 1954 विक्रमी को धर्मवीर पं. लेखराम को लाहौर में एक हत्यारे ने छुरा घोंपकर मार दिया था। इस पवित्र बलिदान की स्मृति में हमें यह पर्व मनाना चाहिए ।

श्रद्धानन्द बलिदान दिवस :

23 दिसम्बर 1926 को आर्यसमाज के प्रमुख नेता, गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक तथा स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रणी नेता स्वामी श्रद्धानन्द को दिल्ली में अब्दुल रशीद ने गोली मार कर मार दिया था। स्वामी श्रद्धानन्द के इस पवित्र बलिदान की स्मृति में हमें यह उत्सव मनाना चाहिए। दिल्ली में प्रतिवर्ष 25 दिसम्बर को आर्य केन्द्रीय सभा द्वारा एक विशाल शोभा यात्रा निकाली जाती है जिसमें प्रतिवर्ष सभी आर्यसमाजों और शिक्षण संस्थाओं से हजारों लोग भाग लेते हैं। यह शोभा यात्रा बाद में एक

सार्वजनिक सभा में परिवर्तित होकर आर्यनेता जनता को सम्बोधित करते हैं।

होली :

फाल्गुन शुक्ला 13, 14 और पूर्णिमा को यह सम्पूर्ण देश में सोल्लास मनाया जाता है। इस दिन वृहद् यज्ञों का आयोजन किया जाना चाहिए और पारस्परिक सद्भाव को बढ़ाने के लिए प्रेमपूर्वक प्राकृतिक रंगों और फूलों से खेलना चाहिए तथा अन्य खेल-कूदों का आयोजन करना चाहिए दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा प्रत्येक वर्ष तालकटोरा गार्डन में इस पर्व को मनाने के लिए एक विशाल आयोजन करती है जिसमें हजारों लोग सम्मिलित होकर केवल चन्दन और फूलों से होली खेलकर इस पर्व को मनाते हैं।

उपरोक्त पर्वों के अतिरिक्त स्वामी दर्शनानन्द जी, महाशय राजपाल जी, महात्मा हंसराज जी, महात्मा नारायण स्वामी जी तथा शास्त्रार्थ महारथी पं. रामचन्द्र देहलवी जी की स्मृति में सार्वजनिक सभाओं का आयोजन करना चाहिए। हमें उनके सद्गुणों को धारण करने का निश्चय करना चाहिए ।

महापुरुष अपने जीवन काल में धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए तथा देश-जाति के उत्थान के लिए महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। वे अपनी मृत्यु के पश्चात् भी भावी संतति के लिए प्रेरणा के स्रोत होते हैं। हमें चाहिए कि उनके जीवन से, उनके कार्यों से शिक्षा लेकर मानव मात्र के कल्याण हेतु वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में तन-मन-धन से जुट जायें।

डॉ. कमल किशोर गोयनका

जाते हैं। इस प्रकार एक नहीं, अनेक अवसर हमारे सामने उपस्थित होते हैं जब हम न्याय और अन्याय का दो टूक निर्णय नहीं कर सकते । एक साधारण मनुष्य भी चकरा सकता है और कई बार न्यायाधीश भी चकरा जाते हैं। तब अनेक को बुलाया जाता है और वे मिलकर विचार करते हैं। इसे 'बैंच' या 'गोष्ठी' कहते हैं। पंचायत भी ऐसी ही होती है। कभी-कभी तो देश के देश चकरा जाते हैं और न्याय का निर्णय नही कर सकते। तब अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में विचार किया जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि हम पत्थर की एक लकीर खींचकर यह दावा नहीं कर सकते कि 'यही न्याय है।' इसके विपरीत देश और काल के अनुसार न्याय की कसौटी बदलती रहती है। तब न्याय का स्वामी भी बदल जाता है। न्याय के शब्द भी भिन्न हो जाते हैं। किन्तु न्याय की आत्मा कभी नहीं बदलती। वह सदा एक-सी रहती है।

तुम पूछोगे कि न्याय की आत्मा क्या है ? हमें सरल शब्दों में समझा दो कि यह न्याय है और यह अन्याय ताकि हम चक्कर में पड़े बिना न्याय का पालन कर सकें ?

इसका उत्तर बड़ा सरल है कि जब अनेक अच्छे लोग जिसे ठीक कहें वह ठीक है। वही न्याय है। इसी प्रकार अनेक भले लोग जिसे बुरा कहें वह गलत है, वही अन्याय है।

यदि समय कम हो, दूसरों से पूछने का अवसर न मिल

व्यवहार ठीक है और कौन सा गलत ? कौन-सा उचित है और कौन सा अनुचित है ?

प्रश्न सचमुच टेढ़ा है, क्योंकि ऊपर से देखने से न्याय सदा एकसा नहीं रहता। उसका रूप समय और स्थान के अनुसार बदलता रहता है। जो यहाँ न्याय है वही अन्यत्र अन्याय सिद्ध हो सकता है। जो आज अन्याय है, वही कल-परसों न्याय बन सकता है।

उदाहरण के लिए भारत का सैनिक वीरसिंह भारत की सीमा में खड़ा होकर 'भारतमाता की जय' कहकर राष्ट्रध्वज लहराता है तो उसे हम पुरस्कार देते हैं। यह ठीक है। मान लीजिए, उस स्थान से केवल दो मीटर या चार कदम की दूरी पर पाकिस्तान की सीमा आरंभ होती है। यदि वही वीरसिंह चार कदम उधर बढ़कर 'भारतमाता की जय' पुकारे और राष्ट्रध्वज लहराये तो क्या यह ठीक है या गलत? पुरस्कार मिलना चाहिए या दण्ड ?

इसका उत्तर देना सरल नहीं। आप लोगों से पूछकर देखिए। जितने मुँह उतने उत्तर सुनाई देंगे। कोई इसे ठीक कहेगा, कोई गलत। विवाद छिड़ जाएगा। दोनों ओर से प्रमाण दिए जाएँगे। दोनों पक्ष अपनी-अपनी बात पर अटल रहेंगे। सुनने वाले भी अचरज में पड़ जाएँगे। कभी पहले पक्ष की बात सत्य प्रतीत होगी, कभी दूसरे पक्ष की। हम चक्कर में पड़ जाएँगे।

विद्यार्थियों ! इस प्रकार बड़े-बड़े विद्वान् चक्कर में पड़

9

छह आवश्यक बातें !

महात्मा हंसराज जी का ये लेख आज से लगभग सत्तर वर्ष पूर्व 'आर्य गजट' में प्रकाशित हुआ था। आज भी यह लेख उतना ही प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण है।

प्रथम आवश्यक बात-आर्यत्व की घोषणा

आर्यसमाज की उन्नति के लिए सबसे पहली बात यह होनी चाहिए कि प्रत्येक आर्यसमाजी अपने-आपको सगर्व आर्यसमाजी घोषित करे। वह कहीं भी अपने आर्यत्व को छुपाने का प्रयत्न न करे। किसी भी प्रलोभन, भय अथवा डर के कारण अपने आर्यपन को तिलांजलि दे देना, आर्यसमाज के लिए अत्यंत घातक है। संसार में जितने भी मत हैं, सबमें यह बात भली प्रकार पाई जाती है, जैसा कि हज़रत ईसा ने कहा है, 'जो संसार में मुझसे इनकार करेगा, मैं प्रलय के दिन उससे इनकार करूँगा।' इसका भाव यह है कि जो व्यक्ति ईसा का चेला भय के कारण प्रगट करेगा कि मैं ईसाई नहीं हूँ तो प्र लय के दिन जब खुदा का दरबार लगेगा तो ईसा क़हता है कि मैं उस दिन खुदा के सामने साक्षी देते समय इस तथ्य से इनकार कर दूँगा कि यह ईसाई है, अर्थात् मै।

उसके ईसाई होने से इनकारी हो जाऊँगा। इस प्रकार यह नरक में भेजा जाएगा। इसी प्रकार मुसलमानों में भी अपने मत के संबंध में कठोर आज्ञा पाई जाती है। मुसलमानों में संभवतः सब कुकर्मों का प्रायश्चित संभव है, सब पाप क्षमा हो सकते हैं, परंतु जो खुदा तथा उसके रसूल से इनकार करे, वह कदापि क्षमा नहीं किया जा सकता। वह अवश्यमेव नरक की ज्वाला में जलता है।

बौद्धों में भी यह रीति थी कि जब कोई नया व्यक्ति बुद्धमत स्वीकार करता था तो उसे सबके सम्मुख इन बातों की घोषणा करनी पड़ती थी :

(1) मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ। (2) मैं धर्म की शरण में जाता हूँ। (3) मैं संघ की शरण में जाता हूँ। इस प्रकार उससे सार्वजनिक स्वीकृति ली जाती थी कि वह बौद्धमत में प्रविष्ट हो गया है।

सिखों में भी गुरु गोविंदसिंह ने सिखों के लिए प्रत्यक्ष चिन्ह नियत किए, यद्यपि तब सिखों के लिए बड़ा विकट समय था। आजकल जैसे किसी इश्तहारी मुजरिम को पकड़ने वाले को पुरस्कार प्राप्त होता है, ठीक उसी प्रकार मुगल शासकों के काल में जो व्यक्ति सिख का सिर लाए, शासन की ओर से उसे पुरस्कृत किया जाता था। इस प्रकार सिख गाजर-मूली की भाँति काटे जाते थे। इतनी यातनाओं के होने पर भी गुरु ने सिखों के लिए अपने कुछ बाह्य धार्मिक चिन्ह नियत करने आवश्यक समझे। वैदिक धर्म ने भी इस बात की पहचान के लिए कि अमुक व्यक्ति

16

महान् गुण : न्यायप्रियता

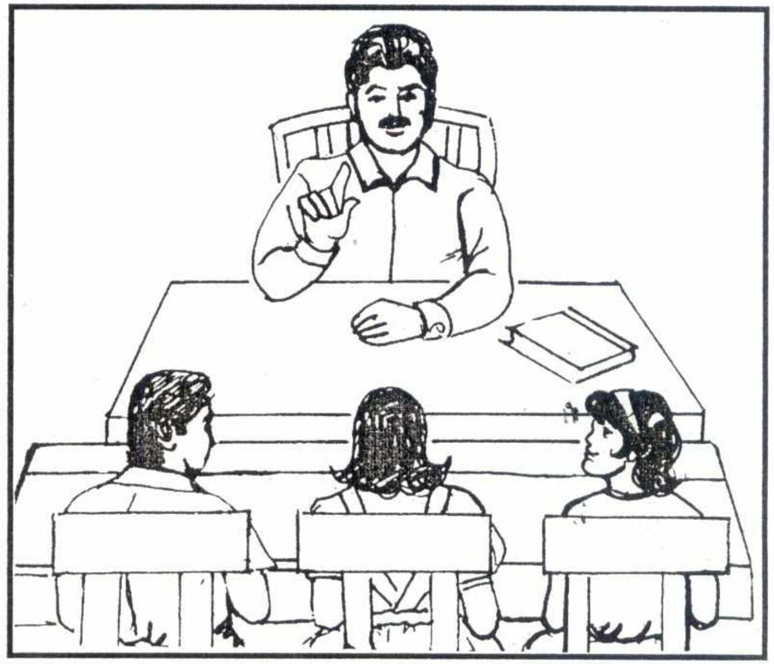

रावण ने बुरा काम किया और उसे दण्ड मिला। सबने कहा – "यह न्याय है।"

भगत सिंह ने अच्छा काम किया, फिर भी फाँसी मिली। सबने कहा – "यह अन्याय है।"

स्पष्ट यह है कि न्याय का अर्थ है – उचित या गलत व्यवहार का निर्णय। किन्तु यह कैसे पता चले कि कौन-सा

क्या तुमने अपने विद्यालय में ऐसे दुबले-पतले छात्र नहीं देखे जो अपने से दुगुने डीलडौल के छात्रों को पहले दाँव में चित कर देते हैं ? ऐसा क्यों ? इसलिए कि उनमें आमविश्वास की शक्ति है।

तुम भी अपनी सोई हुई शक्ति को पहचानो। तुम भी अपने आत्मविश्वास को जगाओ और कदम-कदम पर सफल होना सीखो। जानना चाहते हो, यह कैसे ? बड़ा सरल उपाय है। जिन गुणों को तुम प्राप्त करना चाहते हो उन गुणों को अपने मन में स्थान दो। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे चेहरे पर चमक हो तो पहले अपने हृदय में वैसे भाव उत्पन्न करो और फिर उसकी प्राप्ति के लिए यत्न करो।

दूसरा काम यह करो कि ऐसे व्यक्तियों की जीवनियाँ पढ़ो जो पहले दीन, निर्बल, अनपढ़ और रोगी थे, किन्तु जो अपने प्रयत्न से महान् व्यक्ति बन गये – लालबहादुर शास्त्री, शिवाजी, स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी, नेपोलियन बोनापार्ट, बाबू राजेन्द्रप्रसाद आदि।

तीसरा उपाय यह करों कि तुम मन में यह भली भाँति समझ लो कि ईश्वर जो करता है अच्छा ही करता है। यदि तुम्हें अच्छा फल नहीं मिला तो समझ लो कि तुममें कोई कमी है। तुम अपनी त्रुटियों को दूर करने का संकल्प कर लो, न कि भाग्य को कोसने लगो।

चौथा काम यह करो कि बड़े से बड़ा उत्तरदायित्व लेने से मत घबराओ। कठिन काम करने में तुम सबसे आगे रहो।

वैदिक धर्मी है, चिन्ह नियत किए हैं : शिखा रखना प्रत्येक वैदिक धर्मी के लिए, चाहे वह किसी भी वर्ण का हो, आवश्यक है। दूसरा चिन्ह नमस्ते जो वैदिक धर्मियों के लिए नियत है, वह प्राचीन ऋषि-मुनियों की अभिवादन की विधि, एक शब्द अर्थात् 'नमस्ते' है।

अतः सब मतों में यह शिक्षा दी गई है कि वे अपने धर्म अथवा विश्वास को कतई न छिपाएँ, प्रत्युत विपत्ति के समय छाती तानकर अपने मत को प्रकट करें। जिस प्रकार यह बात अन्य मतों के लिए आवश्यक है, वैसे ही आर्यसमाजियों के लिए भी आवश्यक है। जो व्यक्ति हृदय से तो आर्यसमाजी है, परंतु किसी दबाव के कारण आर्यसमाजी होने से इनकारी है, वह आर्यसमाज को घोर हानि पहुँचाता है। अतः जहाँ भी तुम्हें अवसर प्राप्त हो, तुम अपने. आपको प्रसिद्ध करो कि मैं आर्यसमाजी हूँ। अपने गृह पर कहो कि मैं आर्यसमाजी हूँ। अपने पिता, अपनी माता, सगे-संबंधियों से, अपने मित्रों से और यदि अवसर प्राप्त हो तो अपने अधिकारियों तक से यह कह दो कि मैं आर्यसमाजी हूँ। स्मरण रखो कि जो व्यक्ति तनिक भय से अपने आर्यसमाजी हाने से इनकार कर देता है, वह आर्यसमाज के लिए एक कलंक है तथा वह आर्यसमाज की कुछ भी सेवा नहीं कर सकता।

दूसरी आवश्यक बात : संध्या और प्रार्थना

आर्यों के लिए दूसरी आवश्यक बात संध्या या प्रार्थना है। ये दोनों प्रत्येक आर्यसमाजी के लिए अत्यंत आवश्यक है। इनसे

धार्मिक जीवन लाभ होता है। प्रश्न होगा कि संध्या तथा प्रार्थना से क्या बनता है ? वाटरवर्क्स से, जिसके साथ ही नल लगे हुए हैं, जो नगर के चारों ओर पानी पहुँचाता है, नगर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जल जाता है। यदि वे नल मार्ग में ही कहीं टूट जाएँ तो क्या होगा ? तुम नल की टोंटी को भले ही कितना घुमाओ, लेकिन उसमें से जल नहीं निकलेगा। इसका क्या कारण है ? कारण यह है कि जलाशय से इस टोंटी का संबंध टूट गया है। यही स्थिति तार की है। एक व्यक्ति एक स्थान पर बैठा सहस्रों कोस तक समाचार पहुँचाता है। परंतु, यदि मार्ग में कहीं भी तार टूट जाए अथवा समाचार लेने वाले को ही दूर बिठा दिया जाए तो भले ही कितनी शक्ति लगा दो, तार का समाचार नहीं आएगा। इसका अर्थ भी वही है कि तार अपने स्रोत से दूर हो गया है।

अतः जिस प्रकार नल में जल आने के लिए आवश्यक है कि इसका संबंध जलाशय से जुड़ा रहे, जिस प्रकार तार के समाचार के लिए यह आवश्यक है कि वह भी अपने स्रोत से जुड़ा रहे; इसी प्रकार मनुष्य में बल, शक्ति एवं ज्ञान की लहर चलाने तथा इसे प्रवाहित रखने के लिए आवश्यक है कि उसका संबंध भी सब ऋषियों के भंडार तथा ज्ञान के स्रोत से जुड़ा रहे तथा यह क्रम टूटने न पाए। वेद में कहा गया है :

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्य धेहि ।।

'तू तेज है, वीर्य का स्रोत है तथा बल का भंडार भी तू ही है।'

यह आत्मविश्वास का बल है। जिसका आत्मविश्वास सो जाता है, वह भेड़ बन जाता है। जो अपने-आपको दीन-हीन, दुर्बल, बुद्धू और निकम्मा व बेकार समझ लेता है, वह सचमुच मिट्टी का माधो सिद्ध होता है। किन्तु यदि वह अपने अन्दर सोई हुई शक्ति को पहचान ले तो एक दिन ही नहीं, एक क्षण में ही वह अजेय वीर बन सकता है।

संसार के अधिकांश गरीब युवक केवल धन से गरीब नहीं, अपितु मन से भी गरीब हैं, क्योंकि उनमें आत्मविश्वास नहीं हैं, हजारों नहीं, लाखों व्यक्ति अपनी योग्यता और गुणों से अनजान-अपरिचित होने के कारण जीवन-भर निर्धनता, निरक्षरता और असफलता के दुख पाते रहते हैं। बेकार पड़े रहने से उनकी शक्तियाँ कुन्द हो जाती हैं।

विद्यार्थियों ! तुम्हारा अपनी कार्य-शक्ति में कितना विश्वास है ? क्या तुम केवल 'पास-मार्क' लेकर उत्तीर्ण होना ही अपना कर्तव्य समझ चुके हो ? या तुम्हें अपने 'पास' होने का भी विश्वास नहीं रहता ? अथवा तुम कक्षा में प्रथम आने के लिए कटिबद्ध हो ? अथवा तुम सीनियर सैंकण्डरी बोर्ड की परीक्षा में प्रथम आने की कल्पना करते हो ? विश्वास रखो कि तुम अपने से जितनी सफलता की आशा करते हो, उतनी ही तुम्हें मिलेगी। भला हम उस खिलाड़ी से दस फुट लम्बी छलाँग की आशा कैसे कर सकते हैं जिसके मन में आरम्भ से ही यह सन्देह है कि मैं छह : सात फुट से अधिक लम्बी छलाँग नहीं लगा सकता।

एक दिन एक शेर ने भेड़ों में शेर के बच्चे को देखा। शेर ने उससे कहा – अरे, तू शेर का बच्चा होकर भेड़ों के साथ क्यों रहता है ? उत्तर मिला–मैं शेर का बच्चा नहीं, भेड़ का बच्चा हूँ। शेर ने समझाया – अरे ! तुझे अपने में छिपी शक्ति का पता नहीं, इसलिए तू स्वयं को भेड़ जैसा कमजोर समझ बैठा है। शेर होकर यह दुर्बलता और कायरता तुझे शोभा नहीं देती। तू अपने असली स्वरूप को पहचान, तो तू अनुभव करेगा कि तुझ में असीम शक्ति छिपी पड़ी है। शेर के बच्चे को फिर भी विश्वास न आया। अब शेर ने सोचकर कहा – अब मैं समझा, तेरी आत्मा सो चुकी है। अपनी शक्ति पर तेरा विश्वास मर चुका है। आत्मविश्वास के अभाव के कारण ही तू अपने को दीन-हीन समझ बैठा है। उठ, नदी के किनारे चल और पानी में अपनी परछाईं देखकर पहचान कि क्या तेरा स्वरूप शेर जैसा है या भेड़ जैसा।

बस, ज्यों ही उस शेर के बच्चे ने पानी में अपने असली स्वरूप को पहचाना और उसे पता चला कि वह शेर है, त्यों ही उसका आत्मविश्वास लौट आया। उसे अपने शरीर में असीम शक्ति का अनुभव हुआ। एक क्षण पहले जो भेड़ों के साथ मिमियाता और डरता-छिपता फिरता था, अगले ही क्षण वह वीर और बलवान सिंह बन गया। उसने जोर का सिंहनाद किया और दहाड़ता हुआ हाथियों के एक झुंड पर टूट पड़ा।

इस प्रकार जब हम अपने विचारों के द्वारा परमात्मा के साथ अपना संबंध बनाए रखेंगे, उसके लिए, अपना नाता जोड़ लेंगे तो इसका परिणाम यह हुआ कि हममें शक्ति, बल तथा ज्ञान की शक्तियाँ आती रहेंगी, जो प्रति क्षण हमें प्रसन्न रखेंगी तथा हमारे प्रफुल्लित होने में सहायता देंगी। परमेश्वर के साथ ऐसा संबंध प्रार्थना के द्वारा ही बना रह सकता है। प्रार्थना में इस बात का अवश्य ध्यान रखो कि वह तुम्हारी प्रत्येक बात को भली प्रकार से सुन रहा है, जैसा कि संध्या के मंत्रों में कहा गया है :

प्राची दिगग्निरधिपति..............आदि-आदि

'हे ईश्वर ! तू पूर्व की ओर विद्यमान है, तू पश्चिम की ओर भी है, तू उत्तर की ओर भी है तथा तू दक्षिण की ओर भी है, तू नीचे भी है तथा साथ ही तू ऊपर भी है।' इस प्रकार परमात्मा को सर्वव्यापक जानकर उससे संबंध जोड़ो। उस परमात्मा को अनुभव करने का अभ्यास सदा करते रहो, ताकि यह क्रम टूट न जाए, अधिक दृढ़ होकर तुम्हारे लिए अधिक आनंद तथा सुख का कारण हो।

प्रार्थना के अमृत में विष मत घोलो

परमात्मा की प्रार्थना करने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ईर्ष्या तथा द्वेष की प्रार्थना कभी स्वीकार नहीं होती। उदाहरण के लिए यदि एक विद्यार्थी यह प्रार्थना करे कि अमुक विद्यार्थी कक्षा में मुझसे पीछे (नीचे) रह जाए तथा मैं उससे ऊपर हो जाऊँ तो यह प्रार्थना पूरी न होगी। अथवा, यदि एक व्यक्ति

यह प्रार्थना करे कि मेरा शत्रु नष्ट हो जाए तो ऐसी प्रार्थना भी स्वीकार न होगी, क्योंकि परमात्मा के लिए तो दोनों एक ही समान हैं। ऐसी प्रार्थनाएँ करने से स्वयं अपनी ही हानि होती है। परमात्मा से किस प्रकार की प्रार्थना करनी चाहिए? अपने मन की शुद्धि, ज्ञान की प्राप्ति तथा शुभकामनाओं के लिए हमें परमात्मा से प्रार्थनाा करनी चाहिए।

प्रार्थना किस समय करें

ब्राह्मण ग्रंथों में लिखा है कि हवन सूर्योदय से पूर्व करना चाहिए, दूसरे स्थान पर लिखा है कि सूर्योदय के पश्चात् करना चाहिए, और तीसरे स्थान पर यह भी लिखा है कि सूर्योदय के मध्य करना चाहिए। ये तीन विभिन्न सम्मतियाँ ऋषियों ने दी हैं। इनको पढ़कर प्रश्न उत्पन्न होता है कि इन तीनों में से कौन सी सम्मति उचित है ? इसका उत्तर भी ऋषि देते हैं कि प्रार्थना तथा हवन आदि तुम इन समयों में से चाहे किसी भी समय करो, परंतु जिस समय करना आरंभ करो सदा उसी समय ही किया करो। यदि तुम सूर्योदय से पूर्व, प्रार्थना अथवा हवन करते हो तो उसी समय ही किया करो, और यदि उसके पश्चात् अथवा मध्य में आरंभ करते हो तो सदा ऐसा ही करते रहो आदि। इसकी भी यही विधि है कि संध्या व उपासना के लिए समय नियत करना अत्यंत आवश्यक है और उस समय प्रार्थना के अतिरिक्त किसी और बात का ध्यान न होना चाहिए।

फिर प्रार्थना व संध्या श्रद्धा तथा प्रेम के साथ करनी चाहिए,

15

महान् गुण:आत्मविश्वास

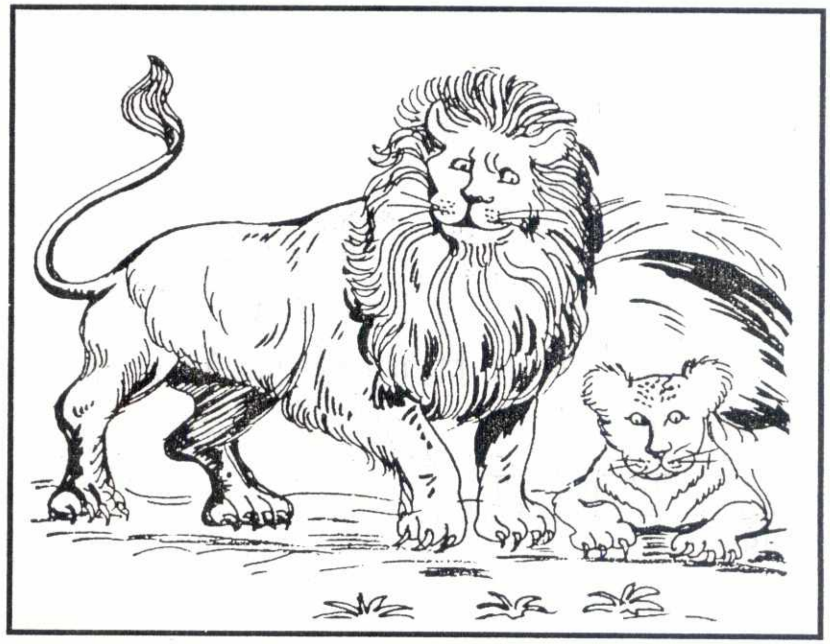

एक बार सिंह का एक बच्चा भटककर अपने माता-पिता से अलग हो गया। रोता-गुर्राता जंगल में इधर-उधर घूमने लगा। संयोगवश उसी समय एक भेड़ चरती हुई उधर से आ निकली। उसे शेर के बच्चे पर दया आ गई और वह उसे लाकर अपने बच्चों के साथ पालने और दूध पिलाने लगी। वह भेड़ के बच्चों की तरह डरता और भागता। इस प्रकार वह कुछ बड़ा हो गया।

• आर्यसमाज मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं रखता ।

• आर्यसमाज पुनर्जन्म को मानता है। पूर्व जन्म के कर्मों के आधार पर यह जन्म या कोई भी जन्म (योनि) मिलता है।

• पाप या पुण्य कभी क्षमा नहीं होते, उनका फल अवश्य मिलता है।

• मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र तथा फल भोगने में परतंत्र है।

• वर्ण का आधार कर्म है न कि जन्म।

• आश्रम-व्यवस्था व्यक्ति और समाज की उन्नति का आधार है।

7. स्वामी दयानन्द के पश्चात् आर्यसमाज का कार्य किन-किन महापुरुषों ने किया ?

स्वामी दयानन्द के पश्चात् आर्यसमाज का कार्य स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी दर्शनानन्द, महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय, पंडित लेखराम, पंडित गुरुदत्त आदि अनेक महापुरुषों ने किया।

यह नहीं कि संध्या करने बैठे तो पाँच मिनट में ही समाप्त कर दी। स्वामी जी ने 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखा है कि एक घंटा प्रातः तथा एक घंटा सायं प्रार्थना करनी चाहिए। संध्या करते समय जो शब्द हम मुख से बोलें, उनका हमारे हृदय पर प्रभाव होना चाहिए, जैसे जब हम भूर्भवः स्वः पढ़ रहे हों तो उस समय हमारे मन में वैसे ही विचार आने चाहिए। जल्दी-जल्दी पाठ कर लेने से संध्या के शब्दों का हृदय पर कोई प्रभाव नहीं होता।

तीसरी आवश्यक बात-स्वाध्याय

तीसरी बात जो किसी आर्यसमाजी के जीवन के लिए आवश्यक है, वह 'स्वाध्याय' है। शास्त्रों में स्वाध्याय की इतनी महिमा है कि अन्य.किसी विषय को इतना महत्व नहीं दिया गया। 'सत्यार्थप्रकाश' में स्थान-स्थान पर इसकी पुष्टि की गई है कि स्वाध्याय करो। एक बार नहीं, इस बात को बार-बार दोहराया गया है। जब ब्रह्मचारी विद्या समाप्त करके आचार्य से विदा होता है तो उस समय भी ब्रह्मचारी सब कुछ जानता है, फिर भी आचार्य उसे यह शिक्षा अवश्य देता है कि स्वाध्याय से विमुख मत रहना। स्वाध्याय से प्रमाद मत करना। इस प्रकार स्वाध्याय आर्यों के लिए बड़ा आवश्यक है ?

खेद है कि आजकल लोगों ने स्वाध्याय के अशुद्ध अर्थ ले लिए हैं। कोई व्यक्ति सारा दिन उपन्यास पढ़ता रहता है, वह समझता है कि उसने स्वाध्याय कर लिया। कोई व्यक्ति कोई अंग्रेजी पुस्तक पढ़कर यह समझ लेता है कि उसने स्वाध्याय कर

लिया। कोई और नैतिक पुस्तक पढ़कर यह समझ लेता है कि उसने स्वाध्याय कर लिया। इनमें से अश्लील उपन्यासों का अध्ययन तो कतई स्वाध्याय नहीं है और अन्य पुस्तकों को पढ़ना भी अत्यंत निम्न स्तर का स्वाध्याय है।

शास्त्रों में लिखा है कि **'स्वाध्याय परमेश्वर की वाणी के पाठ को कहते हैं।'** अतः प्रत्येक आर्यसमाजी को अपने घर में वेदों के ग्रंथ रखने चाहिए तथा वे अलमारियों में बंद न रहें, प्रत्युत उनका पाठ भी होना चाहिए। जिन लोगों का इतना सौभाग्य नहीं कि वे वेदमंत्रों के अर्थ समझ सकें, उनके लिए स्वामी जी का 'वेदभाष्य' उपलब्ध है। वे स्वामी जी के आर्यभाषा के 'वेदभाष्य' का ही स्वाध्याय करें। स्वाध्याय में यह आवश्यक नहीं कि एक दस-दस पंद्रह-पंद्रह मंत्रों को पढ़ डाला जाए तथा उनको समझा न जाए, प्रत्युत सिर्फ एक मंत्र पढ़ा जाए तथा उसका अर्थ जानने का यत्न किया जाए। इस प्रकार उसे समझा जाए, फिर उसको अपने जीवन में ढाला जाए, तब जाकर स्वाध्याय से लाभ होगा। केवल पाठ मात्र से इतना लाभ न होगा।

दूसरी कोटि का स्वाध्याय ऋषिकृत ग्रंथों का पठन-पाठन है, परंतु अश्लील उपन्यासों का पढ़ना अत्यंत बुरा है। विशेष रूप से विद्यार्थियों को इससे बचना चाहिए। विद्यार्थियों के लिए ऐसे उपन्यासों का पढ़ाना विष जैसा प्रभाव रखता है। इसलिए ब्रह्मचारियों को इस प्रकार की सब पुस्तकों से बचना चाहिए।

को जड़ से मिटाने के लिये जन-जागृति की लहर चलाई।

• समाज-सेवा के कार्यों में जैसे – बाढ़, अकाल एवं भुकम्प पीड़ितों की सहायता के लिये आर्यसमाज सदा आगे रहा।

• राष्ट-भक्ति, आर्यसमाज की महत्वपूर्ण विशेषता रही है। कितने ही राष्ट्रभक्त इसने देश को दिये हैं, जैसे–स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, शहीद भगत सिंह, राम प्रसाद बिरिमल, भाई परमानन्द, पं. श्यामजीकृष्ण वर्मा आदि महापुरुष आर्यसमाज की ही देन थे।

आत्मिक उन्नति

• आत्मिक उन्नति के लिए आर्यसमाज साहित्य, उपदेशों, प्रवचनों, कथाओं एवं यज्ञों द्वारा महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

• धार्मिक विचारों के प्रचार एवं प्रसार के लिये अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। शिक्षा-संस्थाओं में भी विद्यार्थियों को नैतिक शिक्षा देने का प्रबंध किया गया है।

6. आर्यसमाज के मन्तव्य क्या है ?

• आर्यसमाज एक वैचारिक आन्दोलन और क्रान्ति है।

• यह मनुष्य की सर्वांग उन्नति में विश्वास रखता है, अर्थात् शारीरिक, सामाजिक एवं आत्मिक उन्नति ।

• वेद ईश्वरप्रदत्त ज्ञान है तथा बीज रूप में सभी ज्ञान-विज्ञानों की विद्याओं का वर्णन है।

• ईश्वर एक है।

4. स्वामी दयानन्द जी ने आर्यसमाज की स्थापना क्यों की ?

उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना समाजसुधार के लिए, स्त्रियों एवं शूद्रों के उद्धार के लिए, सच्चे वैदिक धर्म के प्रचार के लिए, स्वराज्य की स्थापना के लिए तथा अंधविश्वास, पाखण्ड, अधर्म आदि को दूर करने के लिए की थी। स्वामी जी **आर्यसमाज के छठे नियम** में लिखते हैं –

''संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।''

5. आर्यसमाज ने इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये क्या किया?

आर्यसमाज ने संसार को प्रत्येक क्षेत्र में मार्ग-दर्शन दिया है। इसके मुख्य कार्य संक्षेप में इस प्रकार हैं :–

शारिरिक उन्नति

• शारीरिक उन्नति के लिए भोजन, व्यायाम, ब्रह्मचर्य, प्राणायाम, शुद्ध आचार और विचार पर बल दिया। कितने ही आर्यसमाज मन्दिरों में औषधालय भी सुचारू रूप से चल रहे हैं।

सामाजिक उन्नति

• स्त्रियों और शूद्रों के लिए शिक्षा के प्रसार के लिये अनेक गुरुकुल, पाठशालाएं, विद्यालय और डी०ए०वी० संस्थाओं का जाल बिछाया।

• सामाजिक उन्नति के लिए अज्ञान, अंध-विश्वास, ढोंग, पाखण्ड, दहेज-प्रथा, बाल-विवाह, जात-पात, सती-प्रथा आदि

चौथी आवश्यक बात – सत्संग

आर्यों के लिए चौथी आवश्यक बात सत्संग है। ईसाई लोग अपने चर्च में जाकर सत्संग करते हैं। मुसलमान भी मस्जिद में जाकर इकट्ठे नमाज पढ़ते हैं। ऋषि दयानंद ने भी सत्संग पर बड़ा बल दिया है। यह जो आर्यसमाज की साप्ताहिक बैठक है, यह सत्संग ही तो है। इसमें सम्मिलित होकर हम दूसरे बुजुर्गों के उपदेश सुनते हैं। परस्पर मेल-मिलाप से हमारा ज्ञान बढ़ता है, परस्पर सहायता की इच्छा उत्पन्न होती है। संसार में कुछ ऐसे व्यक्ति भी है जो यह कहते हैं कि सत्संग की क्या आवश्यकता है, मनुष्य अपनी उन्नति स्वयं कर सकता है। यदि कोई ऐसा व्यक्ति है तो मैं उसे मनुष्य न समझूँगा। मैं समझूँगा वह कोई देवता अथवा ऋषि है। कारण, मनुष्य तो कम से कम एक-दूसरे की सहायता के बिना निर्वाह नहीं कर सकता। वह बात-बात में दूसरों की सहायता पर निर्भर है। हमारा भोजन, हमारा वस्त्र आदि सब कुछ दूसरों की सहायता से ही तैयार होता है, फिर हम कैसे कह सकते हैं कि हम दूसरों की सहायता पर निर्भर नहीं ?

सत्संग के संबंध में एक आवश्यक निर्देश :

सत्संग के संबंध में हमारा यह विचार होना चाहिए कि हमारी संगति अच्छे से अच्छे व्यक्तियों के साथ हो। मित्रता बनाते समय प्रत्येक आर्य भाई को इस बात का विचार रखना चाहिए कि उसकी मित्र-मंडली में अधिक संख्या आर्यसमाजियों की ही हो। कल्पना करो कि दो आर्यसमाजियों की मित्रता है, जिनमें से दूसरे

के चार मित्र ऐसे हैं, जो आर्यसमाजी नहीं हैं। अब जिसके चार मित्र आर्यसमाजी नहीं हैं और एक आर्यसमाजी है, उसके विचार में परिवर्तन आना आवश्यक है। इसलिए ऐसे व्यक्तियों से मित्रता पैदा करनी चाहिए, जो कि आर्यसमाजी हों, तथा अन्य लोगों को आर्यसमाजी विचार का बना लेना चाहिए। हमें सदा आर्यों से ही संबंध स्थापित करने चाहिए। तथा धन संपदा एवं प्रतिष्ठा का विचार कम करना चाहिए।

नाता किससे जोड़ें ?

आजकल क्या देखने में आता है कि बिरादरियों के बंधन में जकड़े हुए आर्य भाई अपनी पुत्रियाँ ऐसे घरों में दे देते हैं, जहाँ पति आर्यसमाजी नहीं होता। परिणाम यह होता है कि वे स्वयं भी कष्ट उठाते हैं, कन्या के लिए भी कष्ट का कारण बनते हैं तथा आर्यसमाज के लिए भी इससे बुरे परिणाम निकलते हैं। अतः अपने नाते-संबंधों तथा वैवाहिक संबंधों में आर्यसमाज का ही अधिक विचार रखना चाहिए। अन्य बिरादरियों तथा धन-संपदा का कम विचार करना चाहिए।

पाँचवीं आवश्यक बात – संग्राम

पाँचवीं आवश्यक बात प्रत्येक आर्य भाई के लिए जो है, वह संग्राम है। संग्राम का अर्थ है लड़ाई, परंतु क्या लड़ाई का अर्थ एक-दूसरे की पगड़ियाँ उतारना है ? क्या यह लड़ाई उचित है ? मेरा भाव इस लड़ाई से नहीं है। मेरा तात्पर्य यह है कि प्रत्येक

14

वैदिक प्रश्नोत्तरी

1. आर्यसमाज क्या है ?

आर्यसमाज श्रेष्ठ पुरुषों का एक विश्व कल्याण हेतु संगठन है। यह कोई मत या सम्प्रदाय नहीं है। यह एक वैचारिक आन्दोलन और क्रान्ति है।

2. आर्यसमाज की स्थापना किसने, कब और कहाँ की ?

आर्यसमाज की स्थापना स्वामी दयानन्द ने सन् 1875 में, मुम्बई में काकड़वाड़ी में की थी।

3. आर्यसमाज की स्थापना के समय भारतवर्ष की क्या दशा थी ?

आर्यसमाज की स्थापना के समय भारतवर्ष अंग्रेजों का गुलाम था। पूरे देश में अंधविश्वास, पाखण्ड और गुरुडम आदि फैले थे। स्त्रियों और शूद्रों (दलितों) पर अत्याचार हो रहे थे। धर्म तथा विद्या के नाम पर अधर्म और अविद्या फैल रहे थे। ईसाई और मुसलमान लोग लालच देकर जोर-जबरदस्ती करके हिन्दुओं को ईसाई और मुसलमान बना रहे थे।

वे भारत को आजाद कर देंगे। लेकिन विजय पाने के बाद वे अपने वादे से मुकर गए। गांधीजी ने उन पर विश्वास करके इस युद्ध में अंग्रेजों का साथ दिया था। अंग्रेजों के इस विश्वासघात का गांधीजी को दुःख हुआ। उन्होंने 9 अगस्त 1942 को 'अंग्रेजों, भारत छोड़ो' का नारा लगाते हुए भारतीयों को 'करो या मरो' आंदोलन में कूद पड़ने का आह्वान किया। इस आंदोलन में हजारों देशभक्त जेलों में डाल दिए गए। परंतु यह आंदोलन दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। अंत में विवश होकर अंग्रेजों ने 15 अगस्त, 1947 को भारत को दो भागों में बाँट दिया और शासन की बागडोर भारतीयों तथा पाकिस्तानियों के हाथ में दे दी।

इस विभाजन का फल देश के दोनों भागों को सांप्रदायिक दंगों के रूप में भोगना पड़ा। भारत में हुए दंगों को शांत करने के लिए गांधी जी को अनशन करना पड़ा। 30 जनवरी, 1948 को जब वे प्रार्थना सभा में सम्मिलित होने के लिए जा रहे थे तो नाथूराम गोडसे ने तीन गोलियाँ चला कर उनकी हत्या कर दी।

उनकी मृत्यु पर अल्बर्ट आइंस्टीन ने कहा था कि एक दिन दुनिया यह विश्वास नहीं कर पाएगी कि सचमुच में हाड़माँस का कोई गांधी यहाँ रहता था। बर्नार्ड शा के शब्दों में – 'गांधी की हत्या यह दिखाती है कि अधिक अच्छा होना कितना खतरनाक है।'

☆☆☆

मनुष्य के मन में भले या बुरे दो प्रकार के विचार उत्पन्न होते है। भले से भले मनुष्य में भी यदि वह देवता या ऋषि नहीं है, कभी-न-कभी बुरा विचार आ ही जाता है, तथा बुरे से बुरे मनुष्य में भी जो विषय की गहरी गंदी दलदल में फँसा होता है, उसमें भी कभी-कभी पवित्र विचार आ सकते हैं। अंतर केवल यह है कि श्रेष्ठ मनुष्य में बुरे विचार कम आते हैं और बुरे मनुष्यों में श्रेष्ठ विचारों की न्यूनता होती है। ये शुभ-अशुभ विचार मानव-जीवन में संग्राम करते रहते हैं। हमारा कर्त्तव्य यह है कि हम श्रेष्ठ विचारों को बढ़ाते जाएँ तथा बुरे विचारों को कम करने का यत्न करें।

छठी आवश्यक बात – समीक्षा

आर्यसमाजी के लिए छठी आवश्यक बात समीक्षा है, अर्थात् इस बात का पता लगाना कि हमने कहाँ तक उन्नति की है, किस स्तर तक हम धार्मिक जीवन में आगे बढ़े हैं, हमारे धार्मिक जीवन में क्या परिवर्तन आया है। यह इसलिए आवश्यक है कि यदि हम प्रयत्न करते जाएँ, परंतु हमें यह ज्ञान न हो सके कि हमने कहाँ तक उन्नति की है, तो हमें इससे लाभ नहीं पहुँच सकता। अतः सदा अपना एक उद्देश्य नियत करके उसकी ओर बढ़ना चाहिए।

ये बातें हैं, जिन पर एक-एक करके आर्यसमाजियों को आचरण करना चाहिए। इन पर आचरण करने से उनकी 'दिन-दुगुनी, रात-चौगुनी' उन्नति होगी तथा आर्यसमाज एवं वैदिक धर्म का बोलबाला होगा।

10

वाल्मीकि

'जो कुछ तुम्हारे पास है, यहां रख दो।'

'भाई ! हम साधुओं के पास क्या धरा है। यह लो। मैंने अपना कमंडल और झोला रख दिया।'

'नहीं, नहीं ! जो धन छिपा रखा है, वह भी निकालो।'

'मेरे पास कुछ नहीं हैं।'

'भाई ! तुम इतना पाप क्यों कमा रहे हो ? जानते नहीं, इसका फल तुम्हें अकेले ही भोगना पड़ेगा!'

'मुझे बातों में मत बहकाओ मैं सब जानता हूं।'

"अपने परिवार को पालने के लिए ही तो मैं यह सब करता हूं। यही मेरा धन्धा है।"

"भाई ! तुम भूलते हो, तुम्हारे माता-पिता, स्त्री/पुत्र कोई भी इस पाप का फल भोगने को तैयार नहीं है !"

'यह कैसे हो सकता है !'

'विश्वास न हो तो जाकर उनसे पूछ लो।'

'अच्छा मैं पूछने जाता हूं। लेकिन तुम्हें पेड़ से बांध कर जाऊंगा। कहीं तुम भाग न जाओ।'

अब डाकू वाल्मीकि नारदजी को पेड़ से बांध कर गया। जाते ही माता के चरण स्पर्श किए, और पूछा, मां यह जो मैं दिन रात रास्ते चलते यात्रियों को लूट-लूट कर सारे परिवार का पालन करता हूं, इस कर्म का फल हम सब मिलकर भोगेंगे न ?'

माता पुत्र के सिर पर हाथ रख कर बोली –'बेटा जो जैसा

ये वकालत पास करके भारत लौटे और मुंबई पहुँच गए। इस समाचार से इनके हृदय पर गहरी चोट लगी। ऐसा अनुभव हुआ मानो इनकी जीवन-ज्योति ही बुझ गई हो।

भारत आकर गांधीजी वकालत करने लगे। कुछ समय पश्चात् एक मुसलमान व्यापारी के मुकदमे की पैरवी करने के लिए उन्हें दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। वहाँ गोरे शासक भारतीयों को 'काला आदमी' कहकर पुकारते थे तथा उनके साथ अपमानजनक व्यवहार करते थे। एक बार एक अंग्रेज ने गाड़ी के प्रथम श्रेणी के डिब्बे से इनको सामान समेत बाहर प्लेटफॉर्म पर ढकेल दिया। उस समय भारतीय काला आदमी गोरी जाति के साथ प्रथम श्रेणी में यात्रा नहीं कर सकता था।

गांधीजी ने इस अन्याय को मिटाने के लिए सत्याग्रह किया। अफ्रीका के गोरे शासकों को अपने नियम बदलने पड़े। इन सत्याग्रहों की कीर्ति भारत में पहुँची तो यहाँ की जनता में भी जागरण आने लगा।

भारत लौटकर गांधीजी ने कांग्रेस की बागडोर सँभाल ली और देश-विरोधी काले कानूनों का विरोध किया। नमक पर टैक्स लगाए जाने पर इन्होंने नमक सत्याग्रह करने के लिए दाँडी नाम के स्थान की ओर कूच किया और वहाँ नमक बनाकर सरकार के काले कानून को जनहित में तोड़ा। 'अन्याय को सहना पाप है'- ऐसा बोलते हुए इन्होंने अन्यायी सरकार से असहयोग किया और जनता को भी ऐसा ही करने को कहा।

गांधीजी ने लोगों को जगाने के लिए तथा सत्य और अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए अनेक बार उपवास किया। दूसरा विश्वयुद्ध शुरू होने पर अंग्रेजों ने वादा किया था कि युद्ध में जीत जाने पर

उन्होंने बचपन में सत्यवादी हरिश्चंद्र और श्रवण कुमार के नाटकों को देखा। उन्हें देखकर मोहनदास ने सदा सच बोलने और माता-पिता का भक्त होने की मन ही मन प्रतिज्ञा कर ली। एक दिन उन्होंने सिसकियाँ भरते हुए अपनी जो भी गलतियाँ हुई थीं उन्हें पिताजी के सामने कह डाला। पुत्र के सत्य भाषण से पिताजी बहुत प्रसन्न हुए।

सत्य-प्रियता के और भी अनेक उदाहरण गांधी जी के जीवन में मिलते हैं। एक बार स्कूल में इंसपेक्टर साहब कक्षाओं की परीक्षा ले रहे थे। इनसे एक शब्द गलत लिखा गया। इनके अध्यापक ने इन्हें अगले लड़के की नकल करके उसे ठीक करने का इशारा किया, परंतु इन्होंने ऐसा नहीं किया। ऐसा करना पाप समझा।

उन दिनों बाल विवाह का प्रचलन था, अतः इनका विवाह भी तेरह वर्ष की आयु में ही हो गया। इनकी पत्नी का नाम कस्तूरबाई था।

पिता की इच्छा के अनुसार बैरिस्टरी की शिक्षा पाने के लिए ये इंगलैंड गए। जब ये विदेश जाने लगे तो इनकी माताजी ने इनसे ये प्रतिज्ञाएँ कराईं–

(1) मैं मांस नहीं खाऊँगा।

(2) मैं शराब नहीं पीयूँगा।

(3) मैं सदाचार का जीवन बिताऊँगा।

सत्यवादी होने के कारण गांधी जी ने इन प्रतिज्ञाओं को पूरी तरह निभाया। जब वे विलायत में पढ़ ही रहे थे, तभी इनकी माताजी का देहांत हो गया। इस बात का पता इन्हें तब चला, जब

करता है, वैसा भरता है। हमें पालना तुम्हारा कर्तव्य है चाहे जैसे भी कमाकर लाओ। यदि तुम बुरा कर्म करते हो तो उसका फल तुम्हें अकेले ही भोगना पड़ेगा।'

वाल्मीकि का ह्रदय कांप उठा। उसने एक-एक करके स्त्री, पुत्र और सम्बन्धियों से पूछा, सभी का उत्तर एक ही था कि 'कर्मफल तो अकेले ही भोगना पड़ेगा।'

यह सुनकर वाल्मीकि की आंखों में आंसुओं की धारा बहने लगी। वह लौट पड़ा; वृक्ष से बंधे नारद जी के चरणों में पड़ गया। आंसू थम नहीं रहे थे। ऋषि ने धैर्य दिया। नारद जी ने पुनः कहा – जैसा करोगे वैसा ही भरोगे।'

'हां महाराज ! मेरी आंखें खुल गईं। मुझे अब अपने चरणों में स्थान दीजिये।'

बेटा ! तुम परमात्मा के नाम के जप का अभ्यास करो। इससे तुम्हारे पापों का मैल धुल जाएगा। तुम उस प्रभु की कृपा के अधिकारी बन जाओगे। उसी स्थान पर वाल्मीकि ने कठोर तपस्या की। वह डाकू से महान ऋषि बन गए। आगे चलकर वह आदि कवि के रूप में प्रसिद्ध हुए।

बच्चों ! संसार में मनुष्य जो चाहे बन सकता है। यदि वह ऋषि-मुनि और योगी बनना चाहे तो बन जाता है। यदि वह डाकू हिंसक बनना चाहे तो बन जाता है। जैसा जो कर्म करता है, उसी के फल से उसका भविष्य बनता है।

वाल्मीकि का आरम्भिक जीवन कितना हिंसक और कठोर था। जब उन्होंने होश सम्भाला, ज्ञान उत्पन्न हुआ। मन में संकल्प लिया। तभी से उनका निर्माण आरम्भ हो गया। जीवन में परिवर्तन से हरियाली आ गयी। खोई हुई बुद्धि, ज्ञान, चेतना और श्रेष्ठ विचार फिर वापिस आ गये। उन्हें लग्न ने ऋर्षि बना दिया।

हम भी महान् बन सकते हैं। हमारा भी इतिहास में नाम अमर हो सकता है। यदि हम इसी क्षण से श्रेष्ठ विचार और कर्म जीवन में धारण कर लें। सारी बुराइयों को छोड़ दें। बुरी आदतों को मजबूती के साथ मन से हटा दें। जब भी बुरे विचार मन में आयें। मजबूत मन बना कर दूर भगा दें।

हमारा कल्याण हो जाएगा। उन्नति के पथ पर बढ़ने लगेंगे। जीवन में सुगन्ध आ जायेगी। चेहरे पर सौन्दर्य उभर आएगा। आंखों में एक अनोखी चमक भर जाएगी। मन में नई उमंगें और तरंगें फूट आयेंगी । जीने का तरीका बदल जाएगा। ये सब कब होगा, जब हम अपने को बदलने का संकल्प लेंगे।

महान् पुरुषों के जीवन खुली पुस्तक की तरह होते हैं। उन्हें कहीं से पढ़ें, वहीं से जीवन के लिए प्रेरणा मिल सकती है। उनके जीवन नीचे से अर्थात् कमजोरियों से उठकर महान् बने हैं। उनमें भी हमारे और आप की तरह कमियां थीं, परन्तु उन्होंने अपनी गलतियों को मजबूती से पकड़ा और दूर किया, तभी वे महान् बन सके।

-डा. महेश वेदालंकार

13

महापुरुषों के जीवन-चरित्र
महात्मा गांधी

भारत में समय-समय पर महान् पुरुष जन्म लेते रहे हैं। राक्षसी प्रवृत्ति को मिटाने के लिए श्रीराम ने और कंस जैसे दुरात्माओं का दमन करने के लिए श्रीकृष्ण ने इस भूमि पर जन्म लिया। वैदिक विचारों को लुप्त होते देख महर्षि दयानंद ने वैदिक धर्म का उद्धार किया तो दासता की जंजीरों से जकड़ी हुई भारत-भूमि को स्वतंत्र करने के लिए महात्मा गांधी का जन्म हुआ।

गांधी जी का जन्म पोरबंदर, काठियावाड़ में 2 अक्टूबर 1869 को हुआ। उनके पिता का नाम कर्मचंद गांधी और माता का नाम पुतली बाई था। बालक का नाम मोहन दास रखा गया। गुजरात में पिता का नाम भी साथ जोड़ने की प्रथा है। अतः पूरा नाम मोहन दास कर्मचंद गांधी हुआ।

मोहनदास की हाईस्कूल तक की शिक्षा पोरबंदर में ही हुई।

प्राण देने के कारण मृत्यु भी धन्य हो गई । गांधी ने 9 जनवरी, 1920 को बनारस में उन्हें श्रद्धाजलि देने के लिए गंगास्नान किया और उस महान् आत्मा के कार्यों को पूरा करने की ईश्वर से प्रार्थना की।

महात्मा गांधी ने स्वामी श्रद्धानन्द के हत्यारे अब्दुल रशीद को दोषी न मानकर उन अखबारों एवं लोगों को उत्तरदायी ठहराया, जो स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय और मदन मोहन मालवीय को "इस्लाम का शत्रु" घोषित कर रहे थे। गांधी जी ने अनेक बार स्पष्ट शब्दों में कहा कि स्वामी श्रद्धानन्द "इस्लाम के शत्रु" नहीं है। गांधी जी ने कहा कि हिन्दु-मुसलमानों को इस हत्या से शिक्षा लेनी चाहिए और उनके रक्त से अपने–अपने हृदय का पाप धो देना चाहिए। गांधीजी ने प्रतिशोध और बदले को भी धर्म विरोधी कहा और निर्देश दिया कि हिन्दुओं को आत्मसंयम रखना चाहिए।

महात्मा गांधी स्वामी श्रद्धानन्द से कुछ मामलों में असहमति के बावजूद, अपना भाई, आदरणीय सहयोगी मानते हुए उनके गुणों के प्रशंसक बने रहे। अस्पृश्यता निवारण के लिए उन्होंने जो कार्य किये, उनकी गांधी जी ने सदैव मुक्तकंठ से प्रशंसा की। यद्यपि दोनों देशभक्तों के क्षेत्रों एवं कार्य प्रणाली में अन्तर था, लेकिन क्या यह संयोग ही था कि दोनों को एक जैसी वीरगति प्राप्त हुई।

-डॉ. कमल किशोर गोयनका

11

महाभारत के मुख्य पात्र

भारतीय लौकिक साहित्य में रामायण के पश्चात् महाभारत का ही स्थान है। यह भारतीय साहित्य का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। महाभारत के प्रमुख रचियता व्यास हैं। इसमें 18 पर्वों में कौरव-पाण्डवों का इतिहास है। इसकी प्रमुख घटना महाभारत का युद्ध है। आज से लगभग 5000 वर्ष पहले महाभारत का युद्ध हुआ था। महाभारत एक धार्मिक ग्रन्थ है। इसके प्रमुख पात्र हैं – भीष्म पितामह, कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, द्रौपदी, द्रोणाचार्य दुर्योधन, कर्ण आदि।

भीष्म पितामह

भीष्म पितामह शांतनु के पुत्र थे। कौरव तथा पाण्डवों के पितामह थे। उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया हुआ था। ये बहुत कुशल योद्धा और धर्मात्मा थे। कौरव-पाण्डवों के युद्ध में इन्होंने कौरवों की ओर से रणक्षेत्र में पदार्पण किया था तथा बहुत वीरता से लड़े थे। अन्त में बाणों से ये इतने बिध गये थे कि सारे शरीर में बाण ही बाण थे किन्तु ये तपस्वी थे मृत्यु को स्वेच्छा से वरण करने की सामर्थ्य इनमें थी। इस शरशैय्या पर पितामह छः महीने तक लेटे रहे क्योंकि सूर्य के दक्षिणायन होने में मृत्यु न चाहते थे । अतः अपने तप के प्रभाव से इन्होंने सूर्य के उत्तरायण होने पर मृत्यु वरण किया।

श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण के पिता का नाम वासुदेव तथा माता का नाम देवकी था। किन्तु इनका पालन पोषण नन्द तथा उनकी पत्नी यशोदा ने किया था। महाभारत के पात्रों में श्रीकृष्ण सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र हैं। युद्धकाल में श्रीकृष्ण ने अति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। युद्धभूमि में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया उपदेश गीता में संग्रहीत प्रत्येक भारतीय के द्वारा पूजा जाता है। इसमें दिया गया उपदेश अत्याधिक उच्चकोटि का है। यह गीता भारतीयों की धार्मिक पुस्तक है। श्रीकृष्ण का चरित्र इतना महान् था कि कई हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी पृथ्वी पर उन्हें भगवान् रूप मानकर भी पूजा जाता है।

अर्जुन द्वारा अपने बन्धु-बान्धवों से युद्ध करने के लिए इन्कार करने पर श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया कि यदि तुम युद्ध कर विजय न प्राप्त करोगे तो पृथ्वी पर अधर्म का शासन स्थापित हो जायेगा। क्योंकि कौरव अधर्म का आश्रय लिए हुए थे। अतः श्रीकृष्ण ने कहा तुम विचार करो कि यह युद्ध भाई-भाई का नहीं अपितु धर्म का अधर्म से युद्ध है। युद्ध से पूर्व भी श्रीकृष्ण ने शांति का प्रयास भी किया। वे दूत बनकर दुर्योधन के पास गये किन्तु उसने शांति के मार्ग को पसन्द न किया।

कृष्ण-सुदामा की मित्रता तो विश्वविख्यात है । शासनाधिकारी श्रीकृष्ण ने निर्धन मित्र सुदामा का बहुत सम्मान किया जबकि प्रायः लोग उच्चासन पर पहुंचकर निर्धनों का तिरस्कार ही करते हैं। इसके अतिरिक्त सुदामा पोटली में जो चावल लाये थे उन्हें भी श्रीकृष्ण जी ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक खाया। श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र धारण करते थे जिसे अन्य कोई न उठा सकता था। केवल इनका पुत्र प्रद्युम्न ही उसे उठाने का सामर्थ्य रखता था।

धैर्य से काम लिया है उसके लिए मैं आपका तथा दिल्ली के लोगों को साधुवाद देता हूं। हम उसके पीछे निहित दमन की भावना का विरोध कर रहे हैं। यह कोई आसान काम नहीं है।

लेकिन अमृतसर में हुए दुःखदायी कांड के बाद जब गांधीजी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया, तो स्वामी श्रद्धानन्द ने दिल्ली समिति भंग करके आंदोलन से अपना हाथ खींच लिया। स्वामी श्रद्धानन्द गांधीजी की ओर से निराश हो गये और उन्होंने गांधीजी के दृष्टिकोण का जोरदार विरोध किया। यह दोनों की महानता थी कि दोनों का प्रेम-भाव फिर भी बना रहा। गांधीजी ने "स्वामी जी के संस्मरण" में लिखा है कि "जितना जोरदार उनका विरोध होता था उतना ही जोरदार उनका प्रेम भी होता था।"

स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या से गांधी जी को बड़ा आघात लगा। गांधी जी कांग्रेस कमेटी की बैठक में भाग लेने के लिए गौहाटी जा रहे थे। सोनभोग नामक एक छोटे–से रेलवे स्टेशन पर लाला लाजपत राय का तार मिला। गांधी इस हत्या से स्तब्ध थे। किन्तु उनके विचार में यह हत्या नहीं "वीरगति" थी। गांधी जी ने गौहाटी की 24 दिसम्बर 1926 की बैठक में इसे "अपूर्ण मरण" एवं "धन्य मृत्यु" कहा और कामना की कि ऐसी मृत्यु हम सबको मिले।

26 दिसम्बर, 1926 के अधिवेशन में गांधीजी ने स्वयं शोक प्रस्ताव रखा और उसमें स्वामी श्रद्धानन्द के देशप्रेम, निष्ठा निर्भयता एवं अन्य गुणों की प्रशंसा की ।

"यंग इंडिया (30–12–1926) में "शहीद श्रद्धानन्द जी" शीर्षक में लिखी श्रद्धांजलि में गांधी ने उन्हें "वीरता का अवतार" कर्मवीर एवं "योद्धा" कहा तथा लिखा, "धर्म और सत्य" के लिए

प्रशंसा करते हुए कहा था, "आर्यसमाज की गतिविधि का सर्वश्रेष्ठ परिणाम कदाचित गुरुकुल की स्थापना और उसके परिचालन में दिखाई पड़ता है। यह ठीक है कि महात्मा मुंशीराम की प्रेरणादायक उपस्थिति ही उस शक्ति का अधिष्ठान है, किन्तु यह संस्था सच्चे अर्थों में एक स्वशासित प्रजातंत्रीय और राष्ट्रीय संस्था है, किसी भी प्रकार की सरकारी सहायता या आश्रय से वह बिल्कुल मुक्त है।" इस भाषण में गांधीजी ने निर्धन व्यक्तियों द्वारा दान देने तथा संस्था के प्रबंधकों की जबरदस्त संगठन शक्ति की मुक्तकंठ से प्रशंसा की ।

महात्मा गांधी ने अपने "आत्मकथा" में पहली यात्रा के अनुभव के सम्बन्ध में लिखा, "जब मैं पहाड़ से दीखने वाले महात्मा जी के दर्शन करने और उनका गुरुकुल देखने गया, तो मुझे बड़ी शान्ति मिली। हरिद्वार के कोलाहल और गुरुकुल की शान्ति के बीच का भेद स्पष्ट दिखाई देता था। महात्माजी ने मुझे अपने प्रेम से नहला दिया। ब्रह्मचारी मेरे पास से हटते ही न थे।'

यात्रा के बाद महात्मा गांधी और स्वामी श्रद्धानन्द में सहयोग निरन्तर बढ़ता गया और स्वाधीनता संग्राम में कई बार मिलकर कार्य किया। जब अंग्रेजों ने रोलेट अधिनियम लागू किया, तो स्वामी श्रद्धानन्द ने 30 मार्च, 1919 को दिल्ली में 40 हजार व्यक्तियों के जुलूस का नेतृत्व करते हुए उसका विरोध किया। स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा गांधी जी को भेजे गऐ तार के अनुसार इस दिन हुए गोलीकांड में 4 हिन्दू, 5 मुसलमान मारे गये तथा 13 घायल एवं 20 लापता हुए ।

गांधीजी ने 3 अप्रैल, 1919 को इस बलिदान एवं धैर्य के लिए स्वामी श्रद्धानन्द को तार दिया और लिखा, "रोलट कानून का विरोध करने में आपने तथा दिल्ली के लोगों ने जिस अनुकरणीय

श्रीकृष्ण अत्यन्त उच्च कोटि के योगी तपस्वी थे तभी वह योगीराज श्रीकृष्ण कहलाते हैं। गीता में उन्होंने आत्मा, परमात्मा, वर्णाश्रम आदि का अध्यात्म ज्ञान का उपदेश दिया मृत्यु के संबंध में श्रीकृष्णजी ने कहा है – "जिस प्रकार पुराने वस्त्रों को उतारकर मनुष्य नए वस्त्र पहन लेता है, उसी प्रकार मृत्यु से आत्मा जीर्ण शरीर को त्यागकर नवीन देह में प्रविष्ट हो जाती है। अतः आत्मा अमर है वह कभी नहीं मरती है'

अल्पमति लोग श्रीकृष्ण पर लांछन लगाते हैं कि वह गोपियों का चीर-हरण कर लेते थे, माखन चुराते थे आदि आदि। किन्तु यह मिथ्या है। रुक्मिणी श्रीकृष्ण की पत्नी थी। विवाहोपरान्त भी श्रीकृष्ण ने 12 वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया था तदोपरांत अत्यंत बलिष्ठ पुत्र प्रद्युम्न हुआ था। वे गोपाल थे अर्थात् गऊओं को चराते थे, गोपालक थे। नन्द के यहां इनका बचपन बीता। नन्द कहते ही उसे हैं जिसके बहुत पास सारी गायें हो। अतः जब नन्द के असंख्य गायें थीं, तब कृष्ण को घी, दूध की क्या कमी थी जो वह अन्यत्र चोरी करके माखन खाते। श्रीकृष्ण ऐसे महान् पुरुष हुए कि अपने गुणों के कारण संसार में पूजित हो गए और यहां तक कि पौराणिक तो उन्हें भगवान् मानने लगे।

युधिष्ठिर

युधिष्ठिर पाण्डवों में सबसे बड़े थे। वे बहुत धर्मात्मा और सत्य के पुजारी थे। इन्होंने जीवन भर सत्याचरण ही किया। इसलिए इन्हें धर्मराज कहा जाता था। बचपन में भी ये सत्याचरण ही करते थे। इससे सम्बन्धित एक घटना है – ये सब भाई कौरव तथा पाण्डव गुरू से शिक्षा ग्रहण किया करते थे। एक बार गुरुजी ने इन सबको सत्य बोलने का पाठ पढ़ाया। दूसरे दिन पाठ को पढ़ाने के पश्चात् गुरु ने सबसे पूछा कि किस-किस को पाठ

हृदयंगम हो गया है। सबने कहा गुरुजी हमें पाठ याद हो गया है। किन्तु युधिष्ठिर ने उत्तर दिया अभी मुझे पाठ हृदयंगम नहीं हुआ है। कारण पूछने पर धर्मराज ने उत्तर दिया कि सत्य का पाठ तभी सार्थक होगा जबकि जीवन में इसको उतारा जाये। अभी मैंने जीवन में इसे नहीं उतारा है इसी से ऐसा उत्तर दिया ।

युधिष्ठिर का भातृस्नेह भी बहुत अधिक था। युधिष्ठिर ने कठिन से कठिन समय में भी धर्माचरण को नहीं छोड़ा। कौरवों से युद्ध में भी इन्होंने छल-प्रपंच का आश्रय नहीं लिया जबकि कौरव नित नई छल-प्रपंच युक्त योजना बनाते थे।

धर्मराज युधिष्ठिर में जुआ खेलने का अवगुण था। उनके इस अवगुण के कारण ही कौरव-पांडवों में कलह बढ़ी। यहां तक कि युधिष्ठिर जुए में सब कुछ हार गए और अन्त में जब कुछ भी न रहा तब अपनी पत्नी द्रौपदी को ही जुए पर दाव पर रख दिया। जब द्रौपदी को भी हार गए तब श्रीकृष्ण ने द्रौपदी की रक्षा की। अतः यह सत्य है कि एक मछली जैसे सारे जल को गंदा कर देती है। उसी तरह एक बुराई व्यक्ति के सभी गुणों पर पानी फेर देती है। इस जुआ खेलने के अवगुण परिणामस्वरूप महाभारत का संग्राम हुआ।

युधिष्ठिर के पिता का नाम पाण्डु तथा माता का नाम कुन्ती था। पाण्डु के अन्य पुत्रों के नाम हैं – भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव। युधिष्ठिर इन सबमें बड़े थे। बड़े होने के कारण राज्य के अधिकारी थे किन्तु दुर्योधन ने इनको छल से जुए में हराकर 12 वर्ष का वनवास दे दिया था। वनवास के पश्चात् युद्ध करके पांडवों ने पुनः अपने राज्य को प्राप्त किया।

अर्जुन

अर्जुन पांडवों में युधिष्ठिर और भीम से छोटे तथा नकुल और

बाद लोग इनको मिस्टर गांधी नहीं, महात्मा गांधी कहने लगे।

गांधीजी ने अपने उत्तर में अन्य बातों के साथ स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा उन्हें भाई कहने की बात का विशेष रूप से उल्लेख करते हुए कहा, "महात्मा जी ने मुझे एक पत्र में "भाई" कहा है, उसका मुझे गर्व है। कृपया लोग यही प्रार्थना करें कि मैं उनका भाई बनने के योग्य हो सकूं। मैं 28 वर्ष बाद अपने देश में आया हूँ मैं कोई सलाह नहीं दे सकता । मैं तो मार्गदर्शन प्राप्त करने आया हूँ और जो भी मातृभूमि की सेवा में लगा है ऐसे प्रत्येक प्राणी के सम्मुख झुकने के लिए तैयार हूं। मैं अपने देश की सेवा में प्राण देने के लिए तैयार हूँ। अब मैं विदेश नहीं जाऊंगा। मेरे एक भाई (लक्ष्मीदास गांधी) चल बसे हैं। मुझे आशा है कि महात्मा जी उनका स्थान ले लेंगे और मुझे भाई मानेंगे।"

स्वामी श्रद्धानन्द ने भाई के नाते मानो आशीर्वाद देते हुए कहा, "मुझे यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि आप अब भारत में रहेंगे और अन्य लोगों की भांति बाहर रहकर भारत की सेवा करने के लिए विदेश नहीं जाएंगे। मुझे आशा है कि गांधी भारत के लिए ज्योति स्तम्भ बन जाएंगे।" स्वामी श्रद्धानन्द की यह भविष्यवाणी कितनी सच हुई, यह हम भारतवासी ही नहीं सारा संसार जानता है।

महात्मा गांधी स्वामी श्रद्धानन्द के जीवनकाल में दो बार 8 अप्रैल 1915 तथा 20 मार्च, 1916 को गुरुकुल कांगड़ी गए तथा उनके शहीद होने के लगभग चार मास उपरान्त 1927 को दीक्षान्त भाषण देने गए थे।

इससे पूर्व गांधीजी 20 मार्च 1916 को गुरुकुल के वार्षिक उत्सव पर जब आये, तो उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी का "स्वशासित, प्रजातन्त्रीय और राष्ट्रीय संस्था" मानते हुए स्वामी श्रद्धानन्द की

के सुझाव और उनके दर्शन की अपनी उत्सुकता को व्यक्त किया। महात्मा गांधी ने "प्रिय महात्मा जी" सम्बोधन के बाद पत्र में लिखा, "श्री ऐंड्रयूज मुझे आपके नाम और काम के बारे में बतला चुके हैं।" इसलिए ऐसा नहीं लगता कि मैं किसी अजनबी को लिख रहा हूं। आशा है, संबोधन के लिए आप मुझे क्षमा करेंगे, क्योंकि मैं और श्री ऐंड्रयूज दोनों ही आप और आपके काम के बारे में चर्चा करते समय यही सम्बोधन करते रहे हैं। श्री ऐंड्रयूज ने मुझे यह भी बतलाया था कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर और श्री सुशील कुमार रुद्र पर आपका कितना अधिक प्रभाव पड़ा है। उनसे मुझे पता चला कि आपके शिष्यों ने सत्याग्रहियों के लिए कितना काम किया था। उन्होंने गुरुकुल के जीवन के इतने सुन्दर शब्द चित्र खींचे थे कि यह पत्र लिखते समय लगता है, जैसे मैं गुरुकुल में ही पहुंच गया हूं। श्री ऐंड्रयूज ने मेरे मन में उक्त तीनों स्थानों को देखने और इन संस्थाओं के प्रधान, भारत के तीन महान् सुपुत्रों के प्रति सम्मान प्रकट करने की उत्कट अभिलाषा जगा दी है।"

महात्मा गांधी के गुरुकुल कांगड़ी पहुंचने से पहले मगनलाल गांधी फेनिक्स पाठशाला के 25 छात्रों के साथ वहां पहुंच चुके थे। गांधी ने 8 फरवरी, 1913 को पत्र लिखकर स्वामी श्रद्धानन्द को बच्चों को प्रेम देने तथा उनके साथ परिश्रम करने के लिए धन्यवाद दिया और लिखा, "बिना आमंत्रण ही आपके निकट पहुंचकर आपके चरणों में सिर झुकाना मेरा कर्तव्य है।"

गांधीजी 8 अप्रैल, 1915 को गुरुकुल कांगड़ी पहुंचे जहां स्वामी श्रद्धानन्द की उपस्थिति में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने उनका स्वागत करते हुए मान पत्र भेंट किया और मिस्टर मोहनदास कर्मचंद गांधी को "महात्मा" की उपाधि से विभूषित किया। इसके

सहदेव से बड़े थे। अर्जुन बहुत बुद्धिमान और उत्कृष्ट कोटि की बाण विद्या में निपुण थे। द्रौपदी स्वयंवर में अर्जुन की बाणविद्या की कुशलता का परिचय हमें मिलता है। उस समय अर्जुन के समान बाणविद्या में निपुण कोई नहीं था। द्रोणाचार्य इनके गुरु थे। वे कौरव तथा पांडव दोनों को विद्या सिखाया करते थे।

एक बार की घटना है कि गुरुजी ने पेड़ पर एक चिड़िया रखी हुई थी। उसकी आंख में तीर मारना था। परीक्षा के दृष्टिकोण से गुरु जी ने प्रत्येक से प्रश्न किया कि तुम क्या देख रहे हो ? प्रायः प्रत्येक ने यही उत्तर दिया कि गुरु जी हम आपको, पेड़ को, चिड़ियां को देख रहे हैं। जब अर्जुन का नम्बर आया तब भी गुरुजी ने यही प्रश्न दोहराया किन्तु अर्जुन ने उत्तर दिया कि गुरुजी मैं तो केवल चिढ़िाया की आंख देख रहा हूँ। गुरुजी अर्जुन का उत्तर सुनकर गद्‌गद् हो गए तथा उन्होंने अर्जुन को आशीर्वाद दिया कि तुम बाणविद्या में अत्याधिक निपुणता प्राप्त करो।

कौरव-पांडव युद्ध में प्रमुख योद्धा वीर अर्जुन ही थे। यद्यपि कौरव एक सौ थे किन्तु अर्जुन के सम्मुख कोई ठहर न पाता था। कौरव नित्य नये षड्यन्त्र रचते थे। विभिन्न कठिनतम व्यूह रचना करते थे किन्तु अर्जुन के सम्मुख उन्हें परास्त होना पड़ता था। पाण्डवों की तरफ से भी मुख्य वीर अर्जुन ही थें

अर्जुन वीर होने के साथ-साथ बहुत सदाचारी भी थे। एक बार उर्वशी नामक अप्सरा इनके सम्मुख आकर खड़ी हो गई तथा निवेदन करने लगी कि अर्जुन मैं तुम्हारे जैसा पुत्र चाहती हूं, परन्तु अर्जुन पीठ करके खड़े हो गए और बोले – "माता मुझे ही अपना पुत्र जान लो।"

युद्धक्षेत्र में अपने ही बंधु और बान्धवों को देखकर, अर्जुन को मोह हो आया कि मैं अपने ही बंधुओं को मारूंगा। अपनों को ही

मारकर सिंहासन प्राप्त करूंगा किन्तु श्रीकृष्ण के उपदेश देने पर कि यद्यपि ये तुम्हारे भाई हैं, किन्तु अत्यन्त अनाचारी। इनका शासन अधर्म का शासन है। हे अर्जुन ! तुम मोह का त्याग कर समस्त प्राणीमात्र की भलाई के लिए अधर्म पर धर्म की विजय के लिए युद्ध करो। अर्जुन ने युद्ध किया विजयी भी हुए ।

दुर्योधन

दुर्योधन धृतराष्ट्र का सबसे बड़ा पुत्र था। पांडवों को वन भेजकर दुर्योधन ही राजगद्दी पर बैठा। वह बहुत ही दुष्ट प्रकृति का किन्तु साथ ही नीतिज्ञ भी था। वन में चले जाने पर भी वह लगातार पांडवों का अहित करता रहा। भरी सभा में द्रौपदी का अपमान दुर्योधन की आज्ञा से ही हुआ था। उसने .पांडवों की हत्या के लिए भी लाक्षागृह जैसे अनेक उपाय किए जिससे कि पांडव उसमें ही जलकर भस्म हो जाएं, किन्तु किसी प्रकार वे बच गए।

दुर्योधन सर्वत्र अनीति का ही व्यवहार करता था। जब शान्ति का सन्देश लेकर श्रीकृष्ण स्वंम दूत बन कर दुर्योधन की सभा में गए तो उसने श्रीकृष्ण को भी कैद करना चाहा था किन्तु वह ऐसा न कर सका। वनवास से लौटने पर जब पांडवों ने अपना राज्य वापस मांगा तो दुर्योधन ने कहा था 'सूच्यग्र नैव दास्यामि विना युद्धेन केश्व' अर्थात् युद्ध के बिना मैं राज्य तो क्या सुई की नोक के बराबर भी जमीन नहीं दूंगा। उसके इस हठ के परिणामस्वरूप ही महाभारत का युद्ध हुआ। यह स्वभाव से ही छली' कपटी तथा दुष्ट था। दुर्योधन कहता था कि मैं धर्म तथा अधर्म को अच्छी प्रकार जानता हूं किन्तु धर्म में मेरी प्रवृत्ति ही नहीं होती तथा मैं अपने अधर्म से हट नहीं सकता। महाभारत युद्ध में भीम के हाथों से दुर्योधन की मृत्यु हुई क्योंकि इसका सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी भीम ही था।

स्वामी श्रद्धानन्द को इस आन्दोलन की जानकारी मिली और उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि गांधीजी के नेतृत्व में लड़े जाने वाले इस सत्याग्रह आंदोलन को धन की आवश्यकता है। स्वामी श्रद्धानन्द ने तुरन्त गुरुकुल कांगड़ी के छात्रों को कुली के रूप में कार्य करके धन संग्रह करने की प्रेरणा दी। इस प्रकार संग्रहीत धन, "मेरे प्रिय भाई" संबोधन से पत्र के साथ गांधीजी को भेजा।

स्वामी श्रद्धानन्द और गांधीजी के प्रथम परिचय की यह कहानी, स्वयं महात्मा गांधी ने "यंग इंडिया" के 6 जनवरी, 1927 के अंक में "स्वामी जी के संस्मरण" शीर्षक से प्रकाशित कीं

गांधीजी ने अपने संस्मरण में लिखा, "स्वामी जी ने मुझे जो पत्र भेजा था, वह हिंदी में था। उन्होंने मुझे "मेरे प्रिय भाई" कहकर सम्बोधित किया था। इस बात ने मुझे मुंशीराम का प्रेमी बना दिया।" इस प्रकार इस छोटे से सम्पर्क से जो सम्बन्ध बना वह स्वामी श्रद्धानन्द के शहीद होने तक घनिष्ठ एवं आत्मीय संबंधों के रूप में चलता रहा।

महात्मा गांधी के दक्षिण अफ्रीका से भारत आने पर स्वामी श्रद्धानन्द से उनकी पहली भेंट गुरुकुल कांगड़ी में 6 अप्रैल 1915 को हुई। गांधी जी 9 जनवरी, 1915 को दक्षिण अफ्रीका से बम्बई बन्दरगाह पहुंचे और शांति निकेतन में महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर से मिलते हुए 5 अप्रैल को हरिद्वार में प्रवेश किया। गांधी जी को स्वामी श्रद्धानन्द से इतने शीघ्र मिलाने का श्रेय सी.एफ. ऐंड्रयूज को है, जिन्होंने गांधी को यह सलाह दी थी कि भारत जाने पर भारत के तीन महान् सुपुत्रों के दर्शन अवश्य ही करने चाहिए, इन तीन महान सुपुत्रों में एक स्वामी श्रद्धानन्द भी थे।

गांधी जी ने भारत आने से कई मास पूर्व 27 मार्च, 1914 को नेटाल "दक्षिण अफ्रीका" से स्वामी श्रद्धानन्द को पत्र में ऐंड्रयूज

जब सन् 1879 में बरेली में आये व स्वामी दयानन्द से अपनी जिज्ञासाओं को शांत कर रहे थे, तब गांधी प्रारम्भिक पाठशाला में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। स्वामी श्रद्धानन्द अर्थात् मुंशीराम सन् 1886 में आर्यसमाज के विधिवत् सदस्य बने तब गांधीजी नवीं कक्षा के छात्र थे।

गांधीजी मई, 1893 में एक बैरिस्टर की हैसियत से भारतीयों का मुकदमा लड़ने के लिए दक्षिण अफ्रीका गये, तो उस समय तक मुन्शीराम आर्यसमाज की सम्पूर्ण गतिविधियों पर छा गये थे और आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान बने।

गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में कई भारतीय आर्यसमाज के प्रचारकों के सम्पर्क में आये और उनके आत्म त्याग एवं देशभक्ति को देखकर वे इतने प्रभावित हुए कि जुलाई, 1905 में जब आर्यसमाज के प्रचार के लिए भाई परमानन्द दक्षिण अफ्रीका पहुंचे, तो गांधीजी ने उन्हें जोहानिसबर्ग में मान-पत्र समर्पित किया।

इधर भारत में स्वामी श्रद्धानन्द ने 25 नवम्बर 1898 में आर्य प्रतिनिधि सभा के माध्यम से गुरुकुल स्थापना का प्रस्ताव स्वीकार करा लिया था और अथक प्रयत्नों से सन् 1902 में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना कर दी थी।

महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीय कुलियों के सम्मान एवं अधिकारों के लिए सन् 1908 में सत्याग्रह आरम्भ किया। यह जन आंदोलन, धरना देना, बिना परवाना फेरी लगाना और व्यापार करना, मांगने पर पंजीकृत प्रमाणपत्र न दिखाना, अंगूठों की छाप देने से इन्कार करना और नेटाल की सीमा पार करके ट्रांसवाल में प्रवेश निषेध का उल्लंघन करना आदि अनेक रूपों में चल रहा था।

द्रौपदी

द्रौपदी महाभारत के प्रमुख स्त्री पात्रों में से है। अर्जुन ने स्वयंवर रीति से धनुर्विद्या का प्रदर्शन करके द्रौपदी से विवाह किया था। यह अत्यन्त तेजस्विनी नारी थीं। पांडवों के वनवास के समय भी इसने अनेक कष्ट सहे। द्रौपदी का राजनीति सम्बन्धी ज्ञान भी उच्चकोटि का था। वनवास के समय युधिष्ठिर को युद्ध की प्रेरणा देते हुए द्रोपदी ने जो बातें कही हैं उनको एक सुलझा हुआ राजनैतिक पुरुष ही कह सकता है उन बातों में द्रौपदी का उच्चकाटि का राजनीति सम्बन्धी ज्ञान प्रकट होता है।

द्रौपदी के पांच पुत्र थे। द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने रात्रि में सोते हुए द्रोपदी के पांचों पुत्रों का वध कर दिया था। इसलिए महाभारत में उनका नाम नहीं आता। द्रौपदी राजा द्रुपद की लड़की थी इसलिए इसका नाम द्रौपदी था। द्रुपद पांचाल प्रदेश के राजा थे। अतः द्रौपदी का नाम पाञ्चाली भी था। दुर्योधन ने द्रौपदी का घोर अपमान किया था। इसी कारण दुर्योधन का वध भीम ने किया। अपने अपमान से दुखी होकर द्रोपदी ने अपने सिर की चोटी को खोलकर यह प्रतिज्ञा की थी कि कौरवों का विनाश होने पर ही इसे बांधा जाएगा। उसकी यह प्रतिज्ञा पूर्ण भी हुई । द्रौपदी जैसी वीर नारियों पर भारतवर्ष को गर्व है।

कर्ण

कर्ण सत्य वचन बोलता था। जब कुन्ती ने कर्ण से पांडवों के विरुद्ध न लड़ने को कहा तो कर्ण ने कहा कि मैं अर्जुन को छोड़कर शेष पांडवों में से किसी को नहीं मारूंगा। कर्ण ने पूरे युद्ध में अपनी इस प्रतिज्ञा का पालन भी किया।

शूरवीर होने के साथ-साथ कर्ण अत्यन्त दानी भी था। कहते

हैं उसके घर से कोई भी याचक खाली हाथ न लौटता था। उसकी मृत्यु के समय भी श्रीकृष्ण वेश बदलकर उसके दान की परीक्षा लेने गए तो कर्ण ने असहाय होने पर भी अपना सोने का दांत तोड़कर दान दिया किन्तु अपना वचन भंग नहीं किया। कर्ण भाग्यवादी न था। उसे पुरुषार्थ पर भरोसा था । वह कहता था,'देवायत्तं कुले जन्म मदायत्त पौरुषम्' अर्थात् किसी भी कुल में जन्म होना भाग्य के आधीन है, किन्तु पुरुषार्थ मेरे अधीन है।

महाभारत के उपदेश वचन

युवा एव धर्मशीलः स्यात्।

मनुष्य को युवा अवस्था से ही धर्म का आचरण करना चाहिए।

न कर्मणा रहितो धर्मः भूतले स्थिति (लभेत)।

कर्म के बिना संसार में धर्म स्थिर नहीं रह सकता।

यथा धेनु सहस्त्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्,

एवं पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति।

जिस प्रकार हजारों गौवों में भी बछड़ा अपनी माता को पहचान लेता है, उसी प्रकार पहले जन्म में किया हुआ कर्म अगले जन्म में मनुष्य के साथ जाता है।

डा. रघुवीर वेदालंकार

12

महात्मा गांधी और स्वामी श्रद्धानन्द

भारत के आधुनिक काल के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी अनेक कारणों से महत्वपूर्ण है। एक प्रमुख कारण यह है कि इस शताब्दी में अनेक युग पुरुषों, दार्शनिकों, सुधारकों, विद्वानों जन नेताओं आदि ने जन्म लिया और देश की सोयी और दासता में जकड़ी जनता को जाग्रत किया। ऐसे महापुरुषों में महात्मा गांधी और स्वामी श्रद्धानन्द का नाम इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। महात्मा गांधी और स्वामी श्रद्धानन्द, दो ऐसे युगपुरुष हुए जिन्होंने अपने–अपने क्षेत्रों में क्रांति उत्पन्न कर दी ।

स्वामी श्रद्धानन्द का जन्म 22 जनवरी, 1858 तथा महात्मा गांधी का जन्म 2 अक्तूबर 1869 को हुआ। इस प्रकार स्वामी श्रद्धानन्द गांधी जी से लगभग 12 वर्ष बड़े थे। स्वामी श्रद्धानन्द